उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—३ जून—१९८४ अंक—६

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सह संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

षड् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५५ रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

हाल ही में जन्मा हुआ बछड़ा बहुत फुर्तीला नजर आता है। वह अपनी माँ का दूध पीता और दिनभर मस्ती में उछलता-कूदता रहता है। परन्तु कुछ दिनों बाद, जैसे ही उसके गले में रस्सी बाँध दी जाती है, वह सूखने लग जाता है, उसकी सारी उमंग जाने कहाँ चली जाती है और वह दुखी, मनहूस चेहरा लिये दीन नजरों से ताकने लगता है। इसी प्रकार जब तक कोई युवक संसार की झंझटों से मुक्त रहता है तब तक वह आनन्द और उत्साह से पूर्ण रहता है। परन्तु जैसे ही वह विवाह-बन्धन में बँधकर संसार में फँस जाता है और उस पर अपने परिवार की जिम्मेदारी का बोझ लाद दिया जाता है, उसका सारा आनन्द जाने कहाँ लापता हो जाता है। उसके चेहरे पर हताशा, उदासीनता और उद्विग्नता का भाव छा जाता है; उसके चेहरे की रौनक, गालों की लाली, सब उड़ जाती है और चिन्ता के कारण ललाट पर बल पड़ जाते हैं। जो जीवन भर पवन की तरह मुक्त, खिले फूल जैसा ताजा और ओसकण जैसा पवित्र बालक बना रह सकता है, वही धन्य है।

(२)

लोहा जब तक भट्ठी में रहता है तब तक लाल दिखाई देता है: बाहर निकालते ही काला बन जाता है। इसी तरह, संसारी मनुष्य जब तक किसी मन्दिर या धार्मिक व्यक्तियों के सत्संग में रहते हैं तब तक वे धर्मभावपूर्ण रहते हैं, परन्तु जैसे ही वे वहाँ से बाहर आते हैं, उनका वह भक्तिभाव का उच्छ्वास जाने कहाँ चला जाता है।

(३)

जिस प्रकार चलनी सारयुक्त वस्तुओं को छानकर बाहर निकाल देती है और असार वस्तुओं को अपने में रख लेती है, उसी प्रकार दुर्जन व्यक्ति अच्छी बातों को तो छोड़ देते हैं पर बुरी बातें अपने में रख लेते हैं। सूप का स्वभाव इसके ठीक विपरीत होता है। सज्जनों का स्वभाव सूप ही की तरह सारग्राही होता है।

रामकृष्ण-वन्दना

—सारदा तनय

ठाकुर तुम पूर्ण ब्रह्म,
चिदानन्दकन्द हो ।

पूर्णकाम निजाराम,
विमुक्त स्वच्छन्द हो ॥

करुण नैन मधुर बैन,
हँसत मन्द-मन्द हो ।

दीनन प्रति हो दयालु,
हरत दुःख द्वन्द्व हो ॥

राग द्वेष का न लेश,
विगत काम-गन्ध हो ।

दीन-बन्धु प्रेम-सिन्धु,
काटत भव-फन्द हो ॥

रहो नाथ सदा साथ,
हरो मोह-बन्ध हो ।

सुख-निधान करो दान,
पदाब्ज-मकरन्द हो ॥

ठाकुर तुम पूर्ण ब्रह्म,
चिदानन्दकन्द हो ।
चिदानन्दकन्द हो ॥

सम्पादकीय सम्बोधन

पावन करो नयन !

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

वे एक धार्मिक संघ के सम्मानित सदस्य थे। रेलवे स्टेशन के प्लैटफॉर्म पर विदा करनेवाले कुछ व्यक्तियों से घिरे हुए। सौम्य वेश-भूषा थी और चेहरे पर भीतर का आह्लाद उभर आया था। नगर की किसी धार्मिक सभा में प्रवचन देकर और प्रशंसा बटोर कर वे लौट रहे थे। प्लैटफॉर्म पर भीड़ थी। उमस भरी गर्मी की उस शाम में उन्हें कोई पंखा झल रहा था। स्टेशन मास्टर द्वारा कुर्सी नहीं दिये जाने के कारण वे अचानक क्रुद्ध हो उठे थे और अपने प्रशंसकों को बता रहे थे कि संसारी लोग कितने मूर्ख होते हैं, पतीत, गँवार और पागल होते हैं। संतों को पहचानते तक नहीं, सम्मान क्या खाक करेंगे ? फिर उन्होंने उस दिन की सभा में अपने प्रवचन की महिमा और अन्य प्रवचनकर्त्ताओं के दिमागी दिवालियेपन की चर्चा शुरू की। लोग हाँ-में-हाँ मिला रहे थे। उन्हें इस बात का भी दुःख था कि त्याग और वैराग्य के सम्बन्ध में इतने उत्तम प्रवचन दिये जाने के बावजूद आयोजकों ने उन्हें उनकी गरिमा के अनुरूप 'विदाई' नहीं की। पैसे देने में वे कटौती कर गये। वे कह रहे थे कि अगली बार से वे कभी इस नगर में नहीं आयेंगे। फिर पैसे वाले धनी व्यक्तियों की भीतरी दरिद्रता की चर्चा कर उन्होंने ईसा मसीह की वाणी उद्धृत की, 'सूई के छेद से ऊँट भले ही निकल जा सकता है लेकिन स्वर्ग के राज्य में धनिकों का प्रवेश नहीं हो सकता।' उनके प्रशंसक नहले पर दहला दिये जा रहे थे। वहाँ घृणा, निन्दा, क्रोध और क्षोभ का वातावरण सघन होता जा रहा था। गाड़ी आने पर लोगों ने उन्हें डब्बे में बैठाया, उनके चरण छुए, चरणों पर पैसे और पुष्प डाले और फिर उच्च स्वर में उनका जयजयकार किया।

प्रायः ही ऐसा होता है कि हम दूसरों को अच्छे से अच्छा उपदेश देते हैं लेकिन स्वयं अपने जीवन में उन्हें अवतरित करने की चेष्टा नहीं करते। दूसरों को हम काम-क्रोध, लोभ-मोह, निन्दा-घृणा आदि विकारों से बचने और सत्य, प्रेम तथा मुदिता में अवस्थित रहने की बात कहते रहते हैं। किन्तु हल्की-सी परिस्थिति के भी आ जाने पर हम स्वयं स्व-निर्दिष्ट पथ से विचलित हो जाते हैं। हम दूसरों की निन्दा करने से बचने की बातें करते हैं, पर अवसर आते ही हम स्वयं औरों की निन्दा करने में लीन हो जाते हैं। दूसरों से क्रोध से विरत रहने की अपील करते हैं और स्वयं हल्की सी बात में आग-बबूला हो जाते हैं। काम-कंचन से मुक्त रहने की दलीलें देते हैं लेकिन किसी युवती को देखते ही जन्म-जन्म की पिपासा अपनी आँखों में उतर आती है। कंचन की आसक्ति से दूर रहने को हम सभाओं में बातें करते हैं लेकिन स्वयं दो पैसे के लिए खींसें निपोड़ते रहते हैं। अभी कुछ ही दिनों पहले की बात है। मैं बाजार से लौट रहा था। राह में एक विशालकाय सांढ़ अपनी सींगों को नीचे-ऊपर करता हुआ मेरी ओर दौड़ा आ रहा था। मैं उसे देखते ही तेजी से पीछे की ओर दौड़ पड़ा और एक दूकान में जा ठिठक गया। मुझे उस सांढ़ की हरकत से भय हो गया था। लगा मैं अभी अभय में ठीक से नहीं प्रवेश कर सका हूँ।

ईसप की कहानियों में इस सम्बन्ध में एक बड़ी रोचक कथा है। "एक सबल-सुन्दर स्वस्थ हिरण किसी सरोवर में अपना प्रतिबिम्ब देखकर अपने बच्चों से कहने लगा,—'देखो, मैं कितना बलवान हूँ, मेरा मस्तक कैसा भव्य है, मेरे पाँव कैसे दृढ़ और मांसल हैं; और मैं

कितना तेज दौड़ सकता हूँ !' उसका यह कहना समाप्त भी नहीं हुआ था कि उस हिरण ने दूर से कुत्तों के भौंकने की आवज सुनी। यह सुनते ही वह जोर से भागा। काफी दूर दौड़ने के बाद हाँफते-हाँफते वह फिर अपने बच्चों के पास आया। बच्चों ने कहा—'अभी तो तुम कह रहे थे, मैं बड़ा बलवान हूँ, फिर कुत्तों की आवाज सुनकर भागे क्यों ?' हिरण ने कहा—"यही तो बात है, कुत्तों की भों-भों सुनते ही मेरा सारा ज्ञान लुप्त हो जाता है !" यही हाल हम लोगों का भी है। हमलोग बातें तो बड़ी-बड़ी करते हैं, सुन्दर संकल्प, ऊँचे आदर्श, महान् धर्म और आत्मिक चैतन्य सत्ता की अमरता की चर्चाएँ तो करते हैं लेकिन ज्यों ही कभी विकट परिस्थिति और प्रलोभन तथा काम और कांचन के कुत्ते भूकने लगते हैं, हम अपने आदर्शों और सुन्दर संकल्पों के सरोवर से ईसप की इस कहानी के हिरण की तरह तेजी से भाग खड़े होते हैं। भगवान श्रीराम-कृष्णदेव भी ऐसी ही एक कथा कहा करते थे कि सुग्गा पिंजड़े में सीताराम-सीताराम रटता रहता है किंतु, बिल्ली को देखते ही सीताराम रटना छोड़कर टें-टें करने लगता है।

लेकिन ऐसा क्यों होता है ? ऐसा क्यों है कि हम बातें ऊँची करके भी स्वयं तेजी से पतन के पथ पर दौड़ पड़ते हैं ?

बात सीधी है। हम मनुष्य हैं। हम में अनेक दुर्बलताएँ भरी पड़ी हैं। हमने अब तक अपने देवत्व को नहीं जगाया है, अपनी दृष्टि को पवित्र नहीं किया है, अपनी आत्मा के कमल-वन में विचरण करना नहीं सीखा है। इसी से ये कठिनाइयाँ हैं। हमारी दृष्टि है गृद्ध-दृष्टि। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे—गिद्ध आसमान में काफी ऊँचाई पर उड़ता रहता है, लेकिन उसकी दृष्टि धरती पर पड़ी किसी लाश पर टिकी रहती है। ज्योंही उसे कोई लाश दिखाई पड़ती है, वह अपनी ऊँची उड़ान छोड़ क्षण भर में नीचे पड़ी सड़ी-गली लाश पर आ बैठता है। यही हाल हमारा हो गया है।

यहाँ एक और बात पर हम विचार करें। हम क्यों किसी की निन्दा या प्रशंसा करते हैं, क्यों किसी से घृणा करते हैं, क्यों किसी पर क्रोध और क्यों किसी से प्रेम करते है ? सबके मूल में एक ही बात है। और वह यह कि जगत् को हम अपने से भिन्न मानते और देखते हैं तथा दूसरों के प्रति किये जाने वाले हमारे आचरण से हमारी अहं-भावना को तुष्टि मिलती है, हमारी वासना की पूर्ति होती हैं, यानी हमें कहीं-न-कहीं, किसी गहरे मन में कोई सुख मिलता है। यह वासना ही अनर्थकारी है। हम किसी से कुछ चाहते हैं—यह चाह ही वासना है—और वह नहीं पाने पर हम दुःखी होते हैं, क्रुद्ध होते हैं तथा उसकी निन्दा और घृणा करने लगते हैं जिससे हमारी लालसाओं की पूर्ति में बाधा खड़ी हुई है। तो क्या हम वासना-रहित, अनासक्त और निष्काम हो जायँ ? ऐसा होना क्या सरल है ? और फिर निष्काम हो जाने से क्या हमारे दुःखों और विपदाओं का अंत हो जायगा ? क्या हम पर-निन्दा आदि विकृतियों से मुक्त हो जायँगे ? और अगर हो भी गये तो इससे क्या हमारी सम्यक् उन्नति हो सकती हैं।

देखिए, जिस कमरे में मैं अभी बैठा हूँ उसकी दीवारों को कोई वासना नहीं हैं। जिस टेबुल पर लिख रहा हूँ उस टेबुल की कोई कामना नहीं हैं। जिस कलम से जिस कागज पर लिख रहा हूँ उस कलम और कागज की तो कोई लालसा या वासना नहीं है। तो क्या ये सब उन्नत हैं ? नहीं। माना आसक्ति नहीं होने के कारण इन्हें दुःख नहीं है, ये क्रोध नहीं करते, निंदा-घृणा नहीं करते पर सदैव जड़ के जड़ बने रहते हैं। उनका विकास तो नहीं होता ! तो क्या विकास के लिए वासना आवश्यक है ? क्या बिना वासना के हम अपने शरीर तक की रक्षा कर सकते हैं ? लगता है, अपनी रक्षा और विकास के लिए वासना आवश्यक है। लेकिन यदि वासना है तो दुःख भी है। तो क्या हम दुःख भोगने के लिए अभिशप्त हैं ? नहीं। प्रश्न यह नहीं होना चाहिए कि वासना आवश्यक है या नहीं, प्रश्न यह होना

चाहिए कि वासना या विषय-वस्तु के प्रति हमारी दृष्टि कैसी होनी चाहिए।

हमारी दृष्टि होनी चाहिए ईश्वर-परक। 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्,—इस जगत् में जो कुछ है वह ईश्वर से आच्छादित है। इस प्रकार देखने की दृष्टि बनानी होगी। ईसा मसीह कहते थे—'स्वर्ग का राज्य तुम्हारे भीतर है, जिसके पास देखने के लिए आँख है, वह देखे, जिसके पास सुनने के लिए कान है, वह सुने।' मतलब यह कि हमारे भीतर और बाहर जो कुछ है, भला या बुरा, सब कुछ ईश्वरमय है। ईश्वर और ईश्वर। ईश्वर के अलावे और कुछ भी नहीं है, किसी की सत्ता नहीं है। इसी का नाम है अनासक्ति, इसी का नाम है त्याग और इसी का नाम है वासना-रहित होना।

स्वामी विवेकानन्द कहते थे—"समस्त जगत् को ईश्वर से ढँक लेना होगा। यह किसी मिथ्यावादिता से नहीं, जगत् के अशुभ और दुःख-कष्ट के प्रति आँखें मींचकर नहीं, वरन् वास्तविक रूप से प्रत्येक वस्तु के भीतर ईश्वर के दर्शन द्वारा करना होगा। इसी प्रकार हमें संसार का त्याग करना होगा। और जब संसार का त्याग कर दिया, तो शेष क्या रहा? ईश्वर! इस उपदेश का तात्पर्य क्या है? यही कि तुम्हारी स्त्री भी रहे, उससे कोई हानि नहीं, उसको छोड़कर जाना नहीं होगा, वरन् इसी स्त्री में तुम्हें ईश्वर-दर्शन करना होगा।······इसी प्रकार सभी वस्तुओं के सम्बन्ध में जानो। जीवन में, मरण में, सुख में, दुःख में सभी अवस्थाओं में ईश्वर समान रूप से विद्यमान है। केवल आँख खोलकर उसके दर्शन करो।···आँखें खोलकर देखो, हम अब तक जिस रूप में जगत को देख रहे थे, वास्तव में उसका अस्तित्व वैसा कभी नहीं था—वह स्वप्न था, माया थी। जो था, वह था एक मात्र प्रभु! वे ही सन्तान के भीतर, वे ही स्त्री में, वे ही पापी में, वे ही अच्छे में, वे ही बुरे में, वे ही पाप में, वे ही पापी में, वे ही हत्याकारी में, वे ही जीवन में और वे ही मरण में वर्त्तमान हैं।"[१]

स्वामी जी अपनी उक्ति को और स्पष्ट करते हुए आगे कहते हैं—"ऐसी बात नहीं कि तुम धन-सम्पत्ति नहीं रखो, आवश्यक वस्तुएँ और विलास की सामग्री न रखो। तुम जो-जो आवश्यक समझते हो, सब रखो, यहाँ तक कि उससे अतिरिक्त वस्तुएँ भी रखो—इससे कोई हानि नहीं। पर तुम्हारा प्रथम और प्रधान कर्त्तव्य है—सत्य को जान लेना, उसको प्रत्यक्ष कर लेना। यह धन किसी का नहीं है। किसी भी पदार्थ में स्वामित्व का भाव मत रखो। तुम भी कोई नहीं हो, मैं भी कोई नहीं हूँ, कोई भी कोई नहीं है।····ईश्वर तुम्हारे भोग्य धन में है; तुम्हारे मन में जो सब वासनाएँ उठती हैं; उनमें हैं; अपनी वासना से प्रेरित हो तुम जो-जो द्रव्य खरीदते हो, उनमें भी वही है; तुम्हारे सुन्दर वस्त्रों में भी वह है और तुम्हारे सुन्दर अलंकारों में भी वही है। इसी प्रकार विचार करना होगा। इसी प्रकार सब वस्तुओं को देखने पर, तुम्हारी दृष्टि में सब कुछ परिवर्तित हो जायगा। यदि तुम अपनी प्रत्येक गति में, अपने वस्त्रों में, अपने वार्तालाप में, अपने शरीर में, अपने चेहरे में—सभी वस्तुओं में भगवान् की स्थापना कर लो, तो तुम्हारी आँखों में सम्पूर्ण दृश्य बदल जायगा और जगत् दुःखमय प्रतीत न होकर स्वर्ग में परिणत हो जायगा।"[२]

इस प्रकार संसार या वासना के त्याग का अर्थ है अपनी दृष्टि में परिवर्त्तन। जगत् जैसा है, वैसा ही बना रहेगा। लेकिन मेरे लिए, आपके लिए, या उन तमाम साधकों के लिए जिनकी जगत् को देखने की दृष्टि बदल गयी है, ब्रह्ममयी हो गयी है, शिवात्मिका हो गयी है—जगत् का स्वरूप बदल जायगा। संसार उनके लिए चिन्मय हो जायगा।

---

१. विवेकानन्द साहित्य : द्वितीय खंड : द्वितीय संस्करण : पृ० १५०-५१।
२. वही वही वही : पृ० १५२

शंकराचार्य का एक बड़ा मार्मिक श्लोक है—

घृतक्षीर द्राक्षा मधु मधुरिमा कैरपि पदैः
विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्र विषयः।
तथा ते सौन्दर्यं परम शिवदृङ्मात्र विषयः
कथङ्कारं ब्रूमः सकल निगमागोचरगुणे ॥

आचार्य शंकर भगवती पार्वती से कहते हैं कि घी, दूध, दाख और मधु की मधुरता को किसी भी शब्द से विशेष रूप से नहीं व्यक्त किया जा सकता। उसे तो केवल आस्वादन करने वाली जिह्वा ही जानती है। उसी प्रकार तुम्हारा सौन्दर्य केवल शिव के ही नेत्रों का विषय है—परमशिव दृङ्मात्र विषयः। इसका वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ? यहाँ बात तो पार्वती के सौन्दर्य के सम्बन्ध में कही गयी है, लेकिन एक बात पर ध्यान दीजिए। पार्वती का सौन्दर्य, जगदम्बा का सौन्दर्य शिव-दृष्टि का ही विषय है। अर्थात् जिसकी दृष्टि में शिव हो—वह पार्वती के सौन्दर्य का अनुभव कर सकता है। मैं कहता हूँ, अगर हमारी दृष्टि में शिव हों, यानी हमारी दृष्टि शिवात्मक हो तो सारे जगत् में जगज्जननी भवानी का निर्मल, पावन, निष्कलुष पार्वतीय सौन्दर्य भास्वर होता हुआ दिखाई पड़ेगा।

दृष्टि शिवात्मक हो तो हम किसकी निन्दा करेंगे? किससे घृणा करेंगे? किससे अपनी प्रशंसा सुनना चाहेंगे? किसके प्रति वासना-बुद्धि से चिंतन करेंगे? सारा जगत् तब एक निर्मल, स्वच्छ सरोवर की भाँति प्रतीत होगा जिसमें ब्रह्मद्रव तरलायित होताहुआ दिखेगा। कोई पराया नहीं लगेगा। जो मैं हूँ, वही सब हैं। जो सब हैं, वही मैं हूँ। ऐसा ही बोध होगा। और मैं चूँकि ब्रह्म हूँ, इसलिए सब ब्रह्म हैं। यह समग्र चराचर जगत् ब्रह्ममय है। इस दृष्टि से देखने पर जगत् आनन्द का एक विलक्षण उद्यान-सा दिखाई पड़ेगा, विधाता के एक परम रम्य काव्य-सा अनुभव होगा, हम सब जिसके ललित छंदों के मनोहारी पद-बन्ध होंगे। निश्चय ही हमें अपनी दृष्टि बदलनी ही होगी।

जब हमारी दृष्टि बदलेगी, शिवात्मक होगी, तब ही स्वामी विवेकानन्द के अनुसार—'हम ईश्वर की इस विश्व-कविता का पाठ और आगे कर सकेंगे। उस समय सारी वस्तुएँ ब्रह्म-भाव धारण कर लेंगी, संसार का प्रत्येक कोना, प्रत्येक अँधेरी गली, बीहड़ मार्ग और और सभी गुप्त अन्धकारमय स्थान, जिन्हें हमने पहले इतना अपवित्र समझा था, ब्रह्मभाव धारण कर लेंगे। वे सभी अपना प्रकृत स्वरूप प्रकाशित करेंगे। तब हम अपने आप पर हँसेंगे और सोचेंगे, यह सब रोना-चिल्लाना केवल बच्चों का खेल था, और हम जननी के समान खड़े होकर यह खेल देख मात्र रहे थे।"[३]

ईश्वर-दृष्टि ऐक्य-दृष्टि है, अद्वैत दृष्टि है। यही ज्ञान है। विषमता की दृष्टि, अनेकत्व की दृष्टि, द्वैत दृष्टि अज्ञान है। "यह अज्ञान और कुछ नहीं, बल्कि यही बहुत्व की धारणा है—यह धारणा कि मनुष्य-मनुष्य से भिन्न है, पुरुष और स्त्री भिन्न हैं, युवा और शिशु भिन्न हैं, राष्ट्र-राष्ट्र से भिन्न है, पृथ्वी चन्द्र से पृथक् है, चन्द्र सूर्य से पृथक् है, एक परमाणु दूसरे परमाणु से पृथक् है। ऐसा बोध ही वास्तव में सब दुःखों का कारण है।...यदि तुम भीतर जाकर देखो, तो इस एकत्व को देखोगे—मनुष्य-मनुष्य में एकत्व, नर-नारी में एकत्व, जाति-जाति में एकत्व, ऊँच-नीच में एकत्व, धनी और दरिद्र में एकत्व, देवता और मनुष्य में एकत्व, मनुष्य और पशु में एकत्व। सभी तो एक हैं। और यदि और भी भीतर प्रवेश करो, तो देखोगे—अन्य प्राणी भी एक ही हैं। जो इस प्रकार एकत्वदर्शी हो चुके हैं, उनको फिर मोह नहीं रहता। वे अब उसी एकत्व में पहुँच गये हैं, जिसको धर्म-विज्ञान में ईश्वर कहते हैं। उनको अब मोह कैसे रह सकता है?...वे अब किसकी कामना-वासना करेंगे? वे सारी वस्तुओं के अन्दर

२. आनन्द लहरी : शंकराचार्य श्लोक सं० २।
३. विवेकानन्द साहित्य : द्वितीय खंड : पृ० १५३।

वास्तविक सत्य की खोज करके ईश्वर तक पहुँच गये हैं, जो जगत् का केन्द्र स्वरूप है, जो सभी वस्तुओं का एकत्व स्वरूप है। यही अनन्त सत्ता है, यही अनन्त ज्ञान है, यही अनन्त आनन्द है। वहाँ मृत्यु नहीं, रोग नहीं, दुःख नहीं, शोक नहीं, अशान्ति नहीं, है केवल पूर्ण एकत्व पूर्ण आनन्द।"४

दोष-दर्शन की दृष्टि को प्रभु-दर्शन की दृष्टि में बदल देना, रूपान्तरित कर देना ही परम पुरुषार्थ है, महान साधना है, महत्तम सिद्धि है। ब्रह्मलीन होने के मात्र पाँच दिन पहले एक नारी भक्त श्री श्री माँ सारदा के दर्शनार्थ आयी थी। उस भक्त महिला ने माँ को प्रणाम कर रोते हुए कहा था—'माँ, हमलोगों का क्या होगा?' श्री माँ ने क्षीण स्वर में उत्तर दिया—'यदि शान्ति चाहती हो माँ, तो किसी का दोष मत देखो, दोष अपना देखना। संसार को अपना बना लेना सीखो; कोई पराया नहीं है माँ, सारा संसार तुम्हारा ही है।" यही उनका अंतिम उपदेश है।"५

मेरे मित्रो, किसी के जीवन के कृष्णपक्ष को, दुर्बल पक्ष को देखना बन्द कर, जगत् में फैले सर्वत्र परम चैतन्य के शुक्ल पक्ष को हम देखने की चेष्टा कर अपने जीवन को क्यों नहीं धन्य बना लें? क्यों नहीं हम अपने नयनों के कलुष को मिटाकर उसे पावन बना लें? भगवान् श्री रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द जी और श्री श्री माँ सारदा से मेरी आंतरिक प्रार्थना है कि वे हम सब के नयनों को पावन—शिवात्मक और ब्रह्ममय—बनाने की करुणापूर्ण कृपा करें। जय भगवान् श्रीरामकृष्ण!

४. विवेकानन्द साहित्य : द्वितीय खंड : पृ० १५८।

५. श्रीसारदा देवी : स्वामी वेदान्तानन्द : रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना पृ० १०५।

अवतार तत्त्व-एक विहंगम-दृष्टि

आचार्य स्वामी मुख्यानन्द पुरी
बेलुड़ मठ, (प०बं०)

अति प्राचीन काल से, जब से मनुष्य की विचार-शक्ति विकसित हुई, मानव इस चराचर दृश्य-जगत् की, जिसका वह स्वयं भी एक अभिन्नांश है, उत्पत्ति के बारे में, तथा उसके पीछे यदि कोई नियामक शक्ति हो तो उसके स्वरूप के सम्बन्ध में विचार करता आया है। मानव के लिए यह केवल अपनी बुद्धि कुशलता के प्रदर्शन का विषय नहीं था, क्योंकि इसका ज्ञान उसके अस्तित्व, जीवनगति, तथा अन्तिम परिणाम से अतीव निकट सम्बन्ध रखता है। जब इस विचार की दिशा में काफी प्रगति हुई तो इस जगत के सृष्टिकर्ता तथा जगन्नियामक सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान् ईश्वर की कल्पना हुई जो इस प्रपंच के अतीत है। लेकिन, ऐसा कोई ईश्वर तो इन्द्रियगोचर नहीं था। यह केवल विचारों पर प्रतिष्ठित धारणा मात्र थी। यदि वास्तव में ईश्वर हो, और इस जगत् से सम्बद्ध हो, तो हमें उसका अनुभव होना चाहिए, उसके अस्तित्व के निदर्शन मिलने चाहिये। जब मनीषियों के मन में इस प्रकार की एक उत्कंठा, ईश्वर-दर्शन की लालसा, जाग उठी तो, उनमें से किसी-किसी इसी भाव से प्रेरित होकर अपने जीवन को संयमित बनाकर मन को इश्वर-चिन्तन में समाहित किया। इसके फल-स्वरूप उसका जीवन पवित्र बना, अन्तःकरण निर्मल हुआ। चित्त एकाग्र होकर मन की गति सूक्ष्म हुई, तथा उसके भीतर सुसूक्ष्म ईश्वरीय तत्व के साक्षात्कार की क्षमता उत्पन्न हुई। उसने अनुभव किया कि सृष्टि में ईश्वर के पदचिह्न सर्वत्र अंकित हैं, यदि हम मन की आँखें खोलकर देखें; तथा हम अपने अंतराल में ईश्वरीय वाणी की आवाज सुन सकते हैं, यदि हम समाहित चित्त से सुनें। केवल हृदयांतराल में प्रतीति ही नहीं, अपितु बहिर्जगत में भी किसी न किसी विशिष्ट रूप में साक्षात् दर्शन भी पा सकते हैं जिससे ईश्वर के अस्तित्व के बारे में सभी सन्देह मिट जाते हैं। जीवन को एक नई स्फूर्ति मिलती है।

किसी अज्ञात वस्तु या व्यक्ति के प्रथम-परिचय में हमें केवल उसका बाह्य स्थूल रूप ही नजर आता है। जब परिचय घनिष्ठ होता है तब सम्बन्ध भी घनिष्ठ बनता है, सम्पर्क निकट होता है। हम उसके अन्तरंग को पहिचानने लगते हैं। परकीयता दूर हो जाती है। परस्पर सम्बन्ध आत्मीयता पूर्ण बनते हैं। इसी मानसिक गति के अनुसार प्रथमतः ईश्वर के बारे में मनुष्य की धारणाएँ थी कि वह सृष्टिकर्ता है। स्वर्गादि लोकों में रहकर इस जगत का नियमन करता है। वह हमारा स्वामी है, हम उसके सेवक हैं। वह राजा है। हम प्रजा हैं। वह न्यायपरायण है। हमें ईश्वर की आज्ञानुसार रहना चाहिए। यदि हम उसके नियमानुसार जीवन-यापन करें, तो ईश्वर सुप्रीत होता है और हमारी रक्षा करेगा। उल्लंघन करें तो उसके कोप के पात्र बनेंगे और यथोचित दंड भी भोगना पड़ेगा।

लेकिन जब हमारे विचारों में परिणति होती है, घनिष्ठता बढ़ती है तो ईश्वर के असली स्वरूप के बारे में भी हमारी धारणाएँ सुसंस्कृत होती हैं। हम अनुभव करते हैं कि ईश्वर केवल सृष्टिकर्ता और जगन्नियामक ही नहीं अपितु वह प्रेमस्वरूप है, दयालु है। जगत् के जीवी उसकी सन्तान हैं और उनके प्रति ईश्वर का मातृ-पितृवत् स्नेह है। हमें भी चाहिए कि हम उससे उसी भाव से अपना नाता जोड़ें। हमारे आचार-विचार-व्यवहार भी उसकी सन्तान के योग्य हों। ईश्वर हमारा

भरण-पोषण, लालन-पालन करता है। हमारी प्रार्थना मानता है। हमारी पुकार सुनता है। वह संकट-मोचक है। आपत् काल में आवश्यक हो तो स्वयं आकर हमारी रक्षा भी करता है—जैसे माता-पिता।

जैसे-जैसे मनुष्य का मन दैवी भाव से प्रपूरित होता है, उसी मात्रा में जगत में ईश्वरीय शक्ति की अभिव्यक्ति का अनुभव करने के लिए भी वह सक्षम होता है। वह देखता है कि ईश-भक्ति-सम्पन्न, परहितनिष्ठ, स्वार्थ-त्यागी महापुरुष जब-तब मनुष्य समाज में प्रकट होते हैं और जनता को ईश-प्रेम तथा सेवामय नैतिक जीवन जीने का उपदेश देते हैं। उनमें ईश्वरीय शक्ति की छटा दीखती है जिसका प्रभाव लोगों पर पड़ता है। जिनपर प्रभाव गहरा पड़ता है ओर जो ईश-प्रेम-सम्पन्न हैं ऐसे भक्तों के मन में इस आशा का उदय भी होता है कि स्वयं ईश्वर हमारे बीच आवें, जैसे कि माता-पिता अपनी सन्तान के पास आते हैं और उन्हें आनंदित करते हैं, जिससे कि हम उसे छू सकें, उसके साथ संलाप कर सकें, उसके साथ खेल सकें, उसके लीला-सहचर बन सकें, उसकी पाद-सेवा कर सकें! और जब असह्य सामाजिक, धार्मिक या राजकीय संकट उपस्थित होते हैं और अन्य कोई उपाय या शरण नहीं रहती तो लोग ईश्वर को ही पुकारते हैं, संकट से मुक्त करने तथा धर्म की रक्षा के लिए। इन सब आशा-प्रतीक्षा व आंतरिक प्रार्थनाओं के अनुरूप जब एक महान् व्यक्ति का अविर्भाव होता है तथा उसका प्रभावपूर्ण गहरा असर बहुजनों पर पड़ता है तो लोग उसमें ईश्वर की ही शक्ति देख पाते हैं। हाँ, यह भी देखने में आता है कि ऐसे महापुरुष अपना नाता ईश्वर के साथ अविच्छिन्न तथा अभिन्न रूप से जोड़े हुए रहते हैं और केवल ईश्वरीय कार्य तथा संदेश के प्रचार के लिए ही उनका जीवन उत्सर्ग हुआ रहता है। उनकी अपनी अहमिका इतनी कुंठित या नहीं-सी हुई रहती है कि उनके माध्यम से केवल ईश्वरीय प्रकाश निर्गत होता रहता है। ऐसे महापुरुषों को लोग अवतार मानने लगते हैं। अर्थात् साक्षात् ईश्वर ही मनुष्य रूप धारण कर हमारे बीच आये हुये हैं ऐसा लगने लगता है ईश्वर के अवतार के दो लक्ष्य होते हैं—(१) भक्तानु-ग्रहार्थ—भक्तों की उपरोक्त आस को पूर्ण करने के लिये,और (२) दुष्ट-निग्रह शिष्ट-परिपालन निभाकर धर्म संस्थापनार्थ। यह है भक्तों की मान्यता।

तो क्या, प्रश्न उठता है, ईश्वर सचमुच अवतरण करता है या केवल मनुष्य ही इस प्रकार मानते हैं? इस प्रश्न का कोई निश्चयात्मक सदुत्तर नहीं दिया जा सकता। क्योंकि आखिर यह विश्वास पर ही निर्भर करता है, यद्यपि उस विश्वास के लिए यथेष्ट आधार होते हैं। फिर भी यह कोई सर्वमान्य तत्व नहीं है। कई धर्मों में मानते हैं, कई में नहीं। और अवतार की कल्पना भी विभिन्न तरीकों से की जाती है। फिर ऐसे भी बहुत हैं जो ईश्वर को ही नहीं मानते, तब अवतार की बात ही क्या! लेकिन जो ईश्वरीय अवतरण को मानते हैं, उनकी दृष्टि से यदि प्रश्न पूछा जाय—क्या ईश्वर का अवतार सिर्फ जब से मनुष्य मानने लगा तभी से होने लगा या तत्पूर्व भी होता रहा? यदि होता रहा था तो मनुष्य उसे क्यों नहीं जान पाया? इसका समाधान यही है कि ईश्वर का अवतार तो नाना रूपों में सदा होता आ रहा है—तत्कालीन आवश्यकताओं की परिपूर्त्ति के लिए। जैसे पुराणों में मत्स्यादि अवतारों का उल्लेख है। लेकिन मनुष्य, अवतार को तभी पहचानता है और उसका सही मूल्यांकन कर सकता है, जब उसके मन की परिणति काफी हुई होती है और उसकी अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति होती है। जैसे कि देश में राजशासन चलता रहता है। लेकिन बालक उसेके बारे में कुछ नहीं जानता; या बहुत ही थोड़ा, और वह भी अपनी बुद्धि के अनुसार। जैसे-जैसे वह प्रवर्धमान होता है, उसकी बुद्धि व ग्रहण-शक्ति खुलती है, और वह उसके सम्पर्क में आता है, वैसे-वैसे वह उस राजशासन को अधिकाधिक जानता है। अपनी जीविका के लिए उस पर निर्भर करता है, कठिनाइयों को दूर करने के लिए, शिक्षा-दिक्षा के लिए, प्रार्थना पत्र भेजता है और योग्य बने तो राज्य-पुरस्कार भी

मिलता है। कभी-कभी राजा स्वयं लोगों के बीच में आकर उनसे मिलकर आनन्द भी करते हैं। नैसर्गिक तत्वों को जानने के बारे में भी यही बात होती है। यद्यपि विविध प्राकृतिक शक्तियों की उपस्थिति व प्रभाव सदा रहते हैं तथापि मनुष्य काल-क्रम में ही उनका आविष्कार करता है, जबकि उसकी अन्वेषणात्मक वैज्ञानिक बुद्धि का विकास होता है। इस प्रसंग में यह भी कहा जा सकता है कि ईश्वर कोई जड़वस्तु तो है नहीं। वह चैतन्य-स्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान है। इसलिए, जब अनेक लोग उनके आगमनार्थ आग्रहपूर्वक पुकारते हैं और उनके दर्शन के लिए लालायित रहते हैं तो ईश्वर अपनी सृष्टि में, अपनी सन्तान के बीच, देह धारण कर प्रकट हो जायँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

अब एक और प्रश्न खड़ा होता है कि—यदि ईश्वर अवतार लें तो क्या ईश्वर की अपनी अलग सत्ता रहेगी, जैसे कि ईश्वर की कल्पना की जाती है—वह जगत के अतीत है ? इस प्रश्न के उत्तर विभिन्न प्रकार से दिये जाते हैं—(१) ईश्वर की मायाशक्ति का (परा-प्रकृति का) एक अंश धरणी पर अवतरित होता है और ईश्वर अपने स्वरूप में अखंड रहता है। (२) वह अपनी योगमाया से आवृत्त रहकर, अपने स्वरूप से च्युत न होकर, लीला अवतार करता है। वह सर्वव्यापी है। इसलिए सर्वत्र एक ही समय पर रह सकता है। (३) वह अपनी माया-शक्ति के द्वारा अवतरित-सा लीला करता है (माया-मानुष-विग्रह या लीला-मानुष-विग्रह)। जैसे कि सूर्य जलाशय में प्रतिबिंबित होता है, अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण रखते हुए। सूर्य का प्रतिबिम्ब जलाशय में दीखता है, जल के साथ-साथ हिलता-डुलता है, लेकिन जल के अन्दर डुबकी लगा के देखने से कहीं नहीं मिलता। फिर भी सूर्य किरणों की आभा में जलस्थ मीन क्रीड़ा करते हैं, इसी प्रकार माया से प्रतिबिम्बित ईश्वर-स्वरूप अवतारपुरुष के दिव्य जीवन के आलोक में भक्त लोग आनन्द-विभोर होते हैं। पर उसकी प्रभा से उनका अज्ञानांधकार दूर हो जाता है और वे अवतार पुरुष में ईश्वर के सच्चिदानन्द स्वरूप को पहचान लेते हैं।

ईश्वरीय अवतार को नैसर्गिक दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। जो लोग ईश्वर नहीं मानते उन्हें भी इस अद्भुत जगत् के आधारभूत एक अनन्त चैतन्य सत्ता को स्वीकार करना ही पड़ेगा, क्योंकि जगत शून्य से तो उद्भव नहीं हो सकता और जड़ से चैतन्य अभिव्यक्त नहीं हो सकता, जैसे कि मनुष्यादि में चैतन्य दिखायी देता है, यदि चैतन्य-शक्ति उस जड़ प्रकृति में बीजान्तर्गत सुसूक्ष्म जीवनी-शक्ति के समान अंतर्निहित न हो। चैतन्य के बिना जड़ के अस्तित्व की प्रतीति तक नहीं हो सकती। जड़ के बारे में सभी प्रकार के विचार और ज्ञान चैतन्य के ही कारण संभव हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि अवतारतत्व नैसर्गिक यानि साहजिक है। हम देखते हैं कि निसर्ग की शक्तियाँ यथावश्यक अपने आप उचित सामंजस्य या संतुलन बना लेती हैं, यदि किसी क्षेत्र में संतुलन नष्ट हो जाय, क्योंकि जगत् में सभी चीजें परस्परावलम्बी हैं। कहीं वायु का चाप अधिक हो और अन्यत्र कम हो तो वायु का अपने आप संचार होता है चापों में सन्तुलन लाने के लिए। यह केवल भौतिक जगत् से ही सम्बन्धित तत्व नहीं है, वरन नैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रों में भी यही नियम विभिन्न ढंग से लागू होता है। इनमें से किसी क्षेत्र में भी कालगति के प्रभाव से जब सन्तुलन नष्ट हो जाता है तो एक विशिष्ट शक्ति मूर्तरूप धारण कर एक महापुरुष के रूप में अभिव्यक्त होती है। वह महापुरुष इस विक्षुब्ध संतुलन के पुनर्गठन के लिए सचेष्ट होता है। सामयिक परिस्थिति ही अपने अंतर्निहित शक्ति को मूर्तरूप देती है, अपने सुधार के लिए। जैसे कि शरीर अपने रोग दूर करके स्वस्थ रहने की कोशिश अपने आप करता है, और रोग के कारण ही वैद्य उत्पन्न होते हैं शरीर की सहायता करने। हाँ, अवश्य समयानुसार यह नया सन्तुलन सुधारित उच्च स्तर पर पुनर्गठित होगा। जब धार्मिक या आध्यात्मिक क्षेत्रों में ऐसे विशिष्ट शक्ति-

सम्पन्न व्यक्ति के अविर्भाव को हम देखते हैं तो उसे हम खासकर ईश्वरीय अवतार मानते हैं। लेकिन अवतार तो असंख्य होते हैं और नाना क्षेत्रों में भी। जैसे कि श्रीमद्‌भागवत में कहा गया है—'अवतारा: असंख्येया:'। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के विभूति योगाध्याय में कहा है—

यद्यत्-विभूतिमत्-सत्वं श्रीमत् ऊर्जितमेव वा।
तत्-तत्-एव अवगच्छत्वं मम तेजोंश संभवम्॥
१०।४१

(संसार में जो-जो भी पदार्थ विभूतियुक्त हैं तथा श्रीमान् और विशेष रूप से प्रभावबलादि गुणों से सम्पन्न हैं, वे सभी मेरी शक्ति के अंश से ही उत्पन्न हुए हैं—हे अर्जुन यह जान लो।)

ऐसे अवतरित महापुरुष सभी नयी-पुरानी शक्तियों के सामंजस्य के केन्द्र बनते हैं। उस केन्द्र से पुनरपि प्रभावशाली समयोचित नई धाराएँ निकलकर जगत् को प्लावित कर देती हैं। वे कालविशेष की आवश्यकताओं से अद्भुत शक्तियों का मूर्त-स्वरूप होने के कारण जनमन के लिए उनका आकर्षण स्वाभाविक ही होता है और कोई उस शक्ति के प्रभाव को रोक नहीं सकता। शक्ति समुद्र से उत्थित उस महातरंग का प्रसार दिनोंदिन अपने आप विस्तृत होता जाता है और अन्य कर्मी केवल उसके प्रभाव के विस्तार का माध्यम या निमित्त मात्र बनते हैं। जैसे कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—

'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्'।

यहाँ पर हम अवतार के सम्बन्ध में गीतोक्त श्रीकृष्ण की वाणी का भी स्मरण कर सकते हैं। वहाँ श्रीकृष्ण ने अवतार का कारण केवल धार्मिक परिस्थिति को ही बताया है और जब कभी परिस्थिति में सुधार की आवश्यकता होती है ईश्वरीय शक्ति सहज ही अवतरित होता है, अर्थात् ईश्वर मनुष्यरूप में प्रकट होते हैं।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (४.७)
(४. ६. ८ भी देखें)

लेकिन ईश्बर के अवतार का विशेष कारण भक्तों का आकर्षण ही है, जैसा भागवत में दिखाया है। क्योंकि धर्म संस्थापना अन्य महापुरुषों के द्वारा भी करवा सकते हैं। जब भक्तों के लिए भगवान आते हैं तो धर्म संस्थापना भी साथ-साथ कर लेते हैं।

□

जब बड़े-बड़े शहतीर पानी के ऊपर एक साथ तैरते हैं, तो उनके ऊपर चढ़कर कितने ही मनुष्य नदी को पार कर सकते हैं; उनके बोझ से वे डूबते नहीं। पर एक छोटी-सी लकड़ी के टुकड़े पर यदि कौआ भी बैठ जाय, तो वह डूब जाती है। इसी प्रकार, जब भगवान के अवतारों का आविर्भाव होता है, तो कितने ही हजारों-लाखों मनुष्य उनके आश्रय से तर जाते हैं। परन्तु साधारण सिद्ध पुरुष किसी तरह केवल आप ही पार हो जाता है।

—स्वामी विवेकानन्द

भगवान बुद्ध : जीवन एवं तत्वोपदेश

—स्वामी वागीश्वरानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर।

गतांक से आगे

धर्म चक्र प्रवर्तन :—

वाराणसी आकर तथागत ऋषिपत्तन वन के मृगदाव नामक प्रदेश में कौंडिन्य आदि पंचवर्गीय भिक्षुओं से मिले। उन्हें दूर से आते देख पहले तो इन भिक्षुओं ने उन पर कुपित होकर उनकी अवमानना करनी चाही परन्तु उनके निकट आते ही उनकी अपूर्व मुखकान्ति देख वे अभिभूत होकर प्रेम-आदर प्रकट करने लगे।

भगवान् ने उनके प्रति उरूवेला में लब्ध सम्यक् संबोधि ज्ञान का उपदेश देना प्रारंभ किया। वे बोले :—

—"हे भिक्षुओ ! ये दो अंत (extremes) प्रव्रज्या लिए व्यक्ति के द्वारा सेवन करने योग्य नहीं हैं। एक तो यह कामसुख में लिप्त होना जो हीन है, ग्राम्य है, अज्ञजनसेव्य है, अनार्य और अनर्थ-संयुक्त हैं; और दूसरा यह जो अपने को कष्ट देता है सो भी दुःख है, अनार्य है, अनर्थपूर्ण है।"

—"हे भिक्षुओ, इन दोनों मार्गों से अलग रहकर तथागत ने मध्यमा प्रतिपद का—मध्यम मार्ग का—साक्षात्कार किया है जो चक्षुओं को खोलनेवाली, ज्ञान प्राप्त करानेवाली एवं उपशम, अभिज्ञा, संबोध और निर्वाण की ओर ले जानेवाली है।"

—"यह वही है जो आर्य अष्टांगिक मार्ग है। यथा-सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि।"

फिर भगवान् ने चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया।

अंत में भगवान् ने कहा—"हे भिक्षुओ, मुझमें इन चार आर्य सत्यों में यथाभूत ज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ और तभी मैंने अनुत्तर सम्यक् संबोधि को प्राप्त कर लिया और जाना कि यही मेरा अंतिम जन्म है, अब पुनर्जन्म नहीं।"

"समस्त दुःखों का नाश करने के लिए जब तक तुम्हें उपसंपदा की प्राप्ति न हो तब तक तुम ब्रह्मचर्य का पालन करो।"

पाँच भिक्षुओं ने श्रद्धावनत हो तथागत का धर्म ग्रहण किया।

यही भगवान् तथागत का प्रथम 'धर्मचक्र प्रवर्तन' था। यहीं से उनके लोककल्याणार्थ अत्यंत कर्मशील जीवन का प्रारंभ हुआ। तथागत के काशी में रहते हुए ही थोड़े समय के अन्दर साठ जनों ने उनका धर्मोपदेश सुन प्रव्रज्या ग्रहण की। इस प्रकार उनके 'संघ' का यहीं संगठन हुआ। संसार को यहीं से 'बुद्ध धर्म-संघ' रूपी त्रिरत्न के विषय में ज्ञात हुआ।

काशी में चातुर्मास बिताकर उरुवेला को जाते हुए भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा—

—"भिक्षुओ, जितने भी मानुष और दिव्य बंधन हैं, मैं उन सबसे मुक्त हूँ। तुम भी उनसे मुक्त होओ और बहुजनहितार्थ, बहुजनसुखार्थ, लोगों पर अनुकंपा करते हुए, हित के लिए, सुख के लिए विचरण करो। आदि, मध्य और अंत में कल्याणकारक इस धर्म का उपदेश करो। अर्थ-सहित, व्यंजनासहित, केवल परिपूर्ण ब्रह्मचर्य प्रकाशित करो।"

धर्म प्रचार कार्य :—इस समय से जीवन के अंत तक सुदीर्घ ४५ वर्ष भगवान् की धर्मदेशना अखंड

अविच्छिन्न चलती रही। कोसीकुरुक्षेत्र और हिमालय से विन्ध्य मेखला तक फैले मध्य देश में सतत संचार करते हुए उन्होंने असंख्य साधकों और सामान्य जनों को अपने उपदेशामृत से तृप्त किया। तपस्वी, वैरागी से लेकर राजा, मंत्री, व्यापारी, कट्टर ब्राह्मण, वैद्य, नापित, दस्यु, वेश्या आदि समाज के विभिन्न स्तरों के स्त्री-पुरुषों को उन्होंने शांति का मार्ग दिखाया—उनका जीवन परिवर्तित कर दिया। सैकड़ों स्त्री-पुरुषों ने भिक्षु बनकर उनके संघ में प्रवेश किया। (वैसे स्त्रियों को भिक्षुणी के रूप में संघ में प्रवेश देना उन्हें पसंद नहीं था परन्तु विमाता महाप्रजावती गोतमी का अत्यन्त आग्रह और शिष्य आनंद की तीव्र इच्छा देख उन्होंने यह सम्मति दी। उन्होंने कहा भी था कि आनंद, यदि स्त्रियों को बौद्ध संघ में प्रवेश न दिया जाता तो यह विशुद्ध धर्म चिरस्थायी हो सकता था, परन्तु अब यह केवल ५०० वर्ष ही टिकेगा। सारिपुत्त, मोग्गल्लान, आनंद आदि कुछ उच्च-अधिकारसंपन्न भिक्षु उनके अत्यंत निकटतम शिष्य थे। इन्होंने तथागत के धर्म की धुरा का अधिकांश भार वहन किया और उनकी सेवा की।

प्रथम बीस वर्ष तक भगवान् तथागत ने उरुवेला, राजगृह, कपिलवस्तु, वैशाली, श्रावस्ती, कोशांबी इत्यादि स्थानों में रहते हुए धर्मदेशना की। फिर अंत के पचीस वर्ष वे अधिकांश समय श्रावस्ती में रहे।

और एक बात कहना आवश्यक है।······अन्यान्य अवतार-महापुरुषों की तरह भगवान बुद्ध के जीवन में भी विरोध करने वालों का अभाव नहीं था। उनके निकट आत्मीय देवदत्त ने मिथ्या आरोप लगा उनकी कीर्ति को मलिन करने का, यहाँ तक कि उनकी हत्या भी करने का प्रयत्न किया। पर ऐसे प्रयत्न व्यर्थ ही हुआ करते हैं।

महापरिनिर्वाण :—आयु के अंतिम वर्ष भगवान् बुद्ध आनंद को साथ ले श्रावस्ती से अंबलट्ठिका, नालंदा पाटलिग्राम आदि होते हुए वैशाली आये। वहाँ उन्होंने गणिका अंबपाली पर कृपा की। उन्होंने जान लिया था कि अब उनके परिनिर्वाण का समय निकट आ गया है। उन्होंने भिक्षुओं से कहा—"मैंने अपने करने लायक काम कर लिया है। भिक्षुओ, तुम निरलस, सावधान और सुशील होओ।······जो भी इस धर्म में प्रमादरहित हो उद्योग करेगा "वही दुःख का अंत करेगा।"

वैशाली से कुसीनारा जाते समय भगवान् पावापुरी गये। अब उनकी आयु ८० वर्ष की हो गयी थी। स्वास्थ्य बिगड़ गया था, शरीर दुर्बल हो गया था। पावा में चुंद कर्मारपुत्र नामक एक लोहार के यहाँ आतिथ्य ग्रहण कर उसका दिया 'सुक्कर माद्दवं' नामक कंद खाने के फलस्वरूप उन्हें रक्तातिसार आरंभ हुआ और कुसीनारा की ओर चलते हुए वे मार्ग में ही क्लान्त होकर बैठ गये। शिष्य आनंद ने शाल वृक्षों के नीचे उनके लिए शय्या बिछा दी। अपने परमप्रिय गुरुदेव की अंतिम अवस्था निकट आयी देखकर आनंद व्याकुल हो रुदन करने लगा। तब भगवान् बोले—

"आनंद, शोक मत करो। संसार में प्रिय वस्तु या व्यक्ति का वियोग अपरिहार्य है। जो कुछ जात, उत्पन्न या भूत है, सो नष्ट होगा ही।"

संघ के लिए उपदेश देते हुए वे बोले—

—"तथागत की शरीर—पूजा से आनंद, तुम सदा उदासीन रहो। सदा सदर्थ के लिए प्रयत्न करो—आत्म-संयमी हो विहरो।···"

"आनंद, ऐसा मत समझो कि हमारे रास्ता चले गये—अब हमारा रास्ता नहीं रहा। मैंने जो धर्म और विनय के उपदेश दिये हैं, वे ही मेरे बाद तुम्हारे रास्ता होंगे।"

फिर उपस्थित भिक्षुओं को संबोधित कर तथागत ने कहा—"किसी की कोई शंका हो तो पूछ ले।"

सब मौन रहे।

तब भगवान् ने अंतिम शब्द कहे—

"सभी कृत वस्तुएँ व्ययशील हैं, नश्वर हैं। प्रत्येक

जन प्रमाद-रहित होकर अपना कर्त्तव्य पूरा कर ले---निर्वाण प्राप्त कर ले।"

यही तथागत के अंतिम शब्द थे।

तत्पश्चात् भगवान् ध्यानमग्न हो गये। वैशाखी पूर्णिमा की ज्योत्स्नामयी रात्रि थी वह। शान्त वन-स्थली में अनेकों भिक्षु भाराक्रान्त हृदय से शोकमग्न हो खड़े थे। भगवान् का मन ध्यान के उत्तरोत्तर गंभीर स्तरों का अतिक्रमण करता हुआ प्रपंचोपशम शांतावस्था में---महापरिनिर्वाण में स्थित हो गया। जगज्ज्योति निर्वापित हुई।

व्यक्तित्व तथा कार्य

भगवान् बुद्ध के लोकोत्तर जीवन तथा कार्य का मर्म वास्तव में अनाकलनीय है। वे पूर्णत्व के मूर्तविग्रह थे। वे व्यक्ति नहीं, विशुद्ध बोधस्वरूप ही थे—उनकी अपूर्व स्व-निरपेक्षता, निःशेष अहंशून्यता देखने पर यही प्रतीत होता है।

परमार्थ ज्ञान की सर्वोच्च भूमि पर सदा आरूढ़ रहते हुए भी, अनासक्ति, निःसंगता और निवृत्तिपरायणता की चरम सीमा तक पहुँचकर भी उनके जीवन में मानवसुलभ भावनाओं का कैसा अप्रतिम समन्वय दिखाई देता है! परदुःखकातरता, करुणा, उदारता, सहृदयता, सहानुभूति, मैत्री, प्रेम आदि कोमल भावों की अभूतपूर्व अभिव्यक्ति उनके जीवन का वैशिष्टय है।

सर्वथा लोकानुकंपा से प्रेरित हो उन्होंने दीर्घ ४५ वर्ष तक निरंतर कार्यव्यस्त जीवन बिताया—अहर्निश लोककल्याणकार्य में मग्न रहे—परन्तु इससे उनका बोध तनिक भी मलिन नहीं हो पाया। परम ज्ञान और कर्म में, उनके जीवन में कोई विरोध नहीं था।' क्रियावान् एप ब्रह्मविदां वरिष्ठः' इस उपनिषदउक्ति का ज्वलंत उदाहरण था उनका जीवन। सभी अवस्थाओं में—खाते-पीते, चलते-फिरते, सब समय वे योगयुक्त रहते—सम्यक संबोधि-ज्ञान या निर्वाण के ही बोध में रहते। (सदा चरति निब्बुतो) उनके स्वयं के शब्द हैं—

---"भिक्षुओ, चित्त की जिस विशिष्ट अवस्था से मैंने प्रथम बार अभिसंबुद्ध होते समय विहार किया था उसी अवस्था से मैं अपने शेष जीवन में भी विहर रहा हूँ।"

बाहरी कर्मकोलाहल से उनके हृदय की शांति या साम्यावस्था में कभी कोई व्याघात नहीं आया। उनका चित्त सदा प्रशान्त गंभीर सरोवर की भाँति निःशब्द-निःस्तब्ध रहता। उस पर निंदा-स्तुति का कोई प्रभाव नही पड़ता। एक ओर उन पर हत्या, व्यभिचार आदि का आरोप लगाने वाले क्रूर व्यक्ति थे, तो दूसरी ओर उन्हें 'भगवान्' कहकर पूजा करने वाले राजा-महाराजा भी थे। परन्तु भगवान बुद्ध दोनों से सर्वथा उदासीन थे।

उन्होंने कभी अतिमानुषी शक्ति नहीं दिखायी। उनका जीवन विनयम्रता और सादगी का आदर्श नमूना था। आडंबर का उसमें गंध तक नहीं था। संस्कृत छोड़ जनभाषा पाली में उन्होंने उपदेश दिया। वह भी अत्यंत सरल संवादात्मक शैली से, दैनंदिन जीवन के उपमा-दृष्टान्तों द्वारा। शुष्क बौद्धिक चर्चा-वाद उन्होंने कभी नहीं किया। कभी किसी की निंदा नहीं की। कभी किसी पर जबरदस्ती नहीं की।

उनका जीवन महान् था, उनका मरण-यदि हम उसे मरण कहें---भी महान् था।

"प्रमादरहित होकर जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर लो---" यही उनका अंतिम उपदेश था।

तत्त्वोपदेश

भगवान् बुद्ध का धर्म सम्यक् संबोधि के प्रत्यक्ष अनुभव पर अधिष्ठित आचार प्रधान धर्म है।

बुद्ध धर्म के तीन मौलिक सिद्धान्त हैं।

(१) सर्वं क्षणिकम्—सब कुछ क्षणिक है।

(२) सर्वं दुःखम्—सब कुछ दुःख है।

(३) निर्वाणं शांतम्—निर्वाण शांत है।

अविद्या-जनित काम तथा तृष्णा से ही दुःखमय जगत् की उत्पत्ति है। शील, समाधि और प्रज्ञा द्वारा अविद्या का नाश करने पर निर्वाण प्राप्त होता है। यह निर्वाण ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। यह वर्ण-जाति—लिंगादि भेद निरपेक्ष है। इसमें प्रत्येक मानव का अधिकार है।

बुद्धदेव तर्क-युक्ति की कसौटी पर धर्म तत्वों को परखने का उपदेश दिया करते थे, परंतु केवल शुष्क चर्चा उन्हें बिलकुल पसंद नहीं थी। उनका कथन था, "मैंने भवरोग का निदान और औषध बता दिया। अब तुम उस औषध का प्रयोग कर रोग-मुक्त हो जाओ। व्यर्थ की चर्चा, अनावश्यक प्रश्न या जिज्ञासा किस काम की ?"

माल्युंकपुत्र के दार्शनिक प्रश्न सुन उन्होंने यही कहा था—"भिक्षुओ, किसी आदमी को यदि विष से बुझा हुआ तीर लग जाए और उसे वैद्य के पास ले जाया जाए, लेकिन वह यह कहे कि मैं तब तक तीर न निकलवाऊँगा जब तक यह न जान लूँ कि मुझे तीर मारने वाला व्यक्ति किस जाति का, किस नाम-गोत्र का, किस रंग-रूप आदि का है, तो भिक्षुओ, उस आदमी को इसका पता लगेगा ही नहीं और वह यों ही मारा जाएगा।"

अनावश्यक दार्शनिक प्रश्नों का उत्तर नहीं दे वे मौन हो जाते थे।

चतुरार्य सत्य :—दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध, दुःखनिरोध-गामिनी प्रतिपद्—उनके धर्म की आधार-शिला है।

चतुरार्य सत्यों का अत्यंत संक्षिप्त सार इस प्रकार है :—

(१) **दुःखम्**—इस संसार का जीवन दुःख से परिपूर्ण है। इसके प्रति तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो जाना चाहिए।

(२) **समुदय** :—इस दुःख का कारण विद्यमान है। वह कारण है 'तन्हा' या तृष्णा---विषयों की प्यास। कामतृष्णा, भवतृष्णा, विभवतृष्णा—इसके प्रकार हैं। इससे छुटकारा पाने की इच्छा--मुमुक्षा---उत्पन्न होनी चाहिए।

(३) निरोध :—इस दुःख का यथार्थ में अंत हो सकता है। कारण को नष्ट कर देने से कार्य नष्ट होगा ही। तृष्णा का समूल नाश कर देने से इसी जीवन में दुःख रहित अवस्था---निर्वाण---प्राप्त हो जाएगी। इस तरह यह आर्य सत्य साधना की ओर प्रवृत्त करता है।

(४) निरोधगामिनी प्रतिपद् :---दुःखों के नाश के लिए वस्तुतः मार्ग (प्रतिपद्) है। साधना का एक विशिष्ट क्रम होता है उसी के अनुसार चलना चाहिए।

और इस दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद् का ही नाम है---मध्यम प्रतिपदा या आर्य अष्टांगिक मार्ग।

प्रज्ञा, शील और समाधिरूप साधनत्रय का ही यह पल्लवित रूप है।

१. सम्यक् दृष्टि २. सम्यक् सकल्प	प्रज्ञा
३. सम्यक् वाचा ४. सम्यक् कर्मान्ति ५. सम्यक् आजीविका	शील
६ सम्यक् व्यायाम ७. सम्यक् स्मृति ८. सम्यक् समाधि	समाधि

सारांश, मन-वचन-कर्म से सम्यग्दर्शन पर आधारित, प्रज्ञायुक्त जीवन यापन करने से समाधिलाभ होगा ही।

भगवान् गथागत के धर्म की दार्शनिक भित्ति के रूप में हम 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का निर्देश कर सकते हैं। 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का अर्थ हैं---'अस्मिन् सति इदं भवति' ---इस चीज के होने पर यह चीज होती है। इसे हम सापेक्षकारणतावाद कह सकते हैं।

जरामरणादि दुःखों का कारण---अन्वेषण करते

हुए प्रथम संबोधि की रात्रि में इस तत्त्व का तथागत ने साक्षात्कार किया था।

इसके द्वादश अंग हैं। पहला अंग दूसरा अंग का कारण है, दूसरा तीसरे का……आदि आदि यह क्रम इस प्रकार है :---

(१) अविद्या (२) संस्कार	(पूर्वजन्म)
(३) विज्ञान (४) नामरूप (५) षडायतन (६) स्पर्श	(वर्तमान जन्म)
(७) वेदना (८) तृष्णा (९) उपादान	(वर्तमान जन्म)
(१०) भव (११) जाति (१२) जरामरण	(भावी जन्म)

इसे भवचक्र कहा गया है।

मूल अविद्यारूप कारण का निरोध होने पर उत्तरोत्तर सभी कार्यों का निरोध होकर जरमरणादि दुःख की निवृत्ति होगी।—यही इसका निष्कर्ष है। इस सिद्धान्त के आधार पर अनेक दर्शनों का निर्माण हुआ है। पर हमें यहाँ विस्तार में नहीं जाना है। अस्तु।

बुद्धदेव के धर्मानुशासन का सार तीन शब्दों में निहित है—

(१) किसी भी प्रकार का पाप न करना,

(२) पुण्य का संचय करना,

(३) स्वचित्त की परिशुद्धि करना,

"सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा।
सचित्त परियोदपनं एतं बुद्धानुसासनं॥"

इन त्रिविध अंगों का यथार्थ रूप से पालन करने से निर्वाणपद की प्राप्ति अपरिहार्य है।

भगवान् तथागत का मार्ग हमारे सनातन धर्म की ही युगप्रयोजन के अनुरूप अभिनव अभिव्यक्ति है। उन्होंने स्वयं अपने धर्म के बारे में कई बार कहा है— "एस धम्मो सनत्तनो"—यह धर्म सनातन है। भगवान् श्रीरामकृष्ण ने इसके बारे में कहा है—"बुद्धदेव के द्वारा प्रवर्तित मार्ग और वैदिक ज्ञानमार्ग में कोई अन्तर नहीं है।"

हमारे पुराण तो बुद्धदेव को ईश्वरावतार ही मानते हैं—

"वासुदेवः पुनर्बुद्धः संमोहाय सुरद्विषाम्।
देवादीनां रक्षणाय अधर्महरणाय च॥"

—'अधर्म का नाश, देवादिकों की रक्षा और असुरों का संमोहन करने के लिए वही वासुदेव श्रीकृष्ण पुनः बुद्धरूप में अवतीर्ण हुए।' अस्तु !

(गरूड़ पुराण ७-७४८-३८)

अंत में, भगवान् तथागत से यह प्रार्थना करते हुए कि उनकी कृपा से हमारे भी जीवन में उस सर्वदुःखनिवृत्ति—प्रपंचोपशम शान्ति—रूप परमानंद का सुदिन उदित हो, आइए, हम आचार्य श्री नागार्जुन के शब्दों में भगवान् की चरणवंदना करें—

"यः प्रतीत्य समुत्पादं प्रपंचोपशमं शिवम्।
देशयामास संबुद्धस्तं वंदे वदतां वरम्॥"

□

चतुर्विधा : भजन्ते माम्

—स्वामी यतीश्वरानन्द

[रामकृष्ण मठ के भूतपूर्व उपाध्यक्ष ब्रह्मलीन श्रीमत स्वामी यतीश्वरानन्दजी महाराज लम्बी अवधि (१८८९-१९६६) तक रामकृष्ण आश्रम, बंगलोर के अध्यक्ष थे। सन् १९५४-५५ तथा १९५८-५९ में वहाँ दिये गये उनके साप्ताहिक प्रवचनों का संक्षिप्त विवरण रामकृष्ण मठ, मद्रास द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'वेदान्त केसरी' में अक्टूबर १९७९ से "How to seek God" शीर्षक से धारावाहिक रूप में छप रहा है। ये प्रवचन साधकों के लिए बड़े उपयोगी हैं। इसका हिन्दी अनुवाद विवेक शिखा के पाठकों के लिए हम क्रमशः प्रकाशित करते रहेंगे। इसके प्रकाशन की अनुमति 'वेदान्त केसरी' ने हमें कृपापूर्वक प्रदान की है। हिन्दी रूपान्तरकार हैं रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी के श्रीमत स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी महाराज।—सं०]

ज्ञानी :

आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु तथा ज्ञानी, उपासकों के ये चार प्रकार होते हैं। इनमें से ज्ञानी परमात्मा का निरंतर अनुभव करता है, अतः वही सच्चा भक्त है। भक्त और भगवान् चुम्बक और सुई के समान हैं। इन दोनों के बीच एक स्वाभाविक आकर्षण रहता है। ज्ञानी से भिन्न सभी अवस्थाएँ अस्थिर है।

जिज्ञासु :

कोई जिज्ञासु हो सकता है जो अपने व्यक्तित्व की सत्यता जानना चाहता है। वह देह, इन्द्रियाँ, मन आदि व्यक्तित्व के विभिन्न अंगों का "नेति नेति" की रीति से त्याग करता है। तब वह अपने विशुद्ध चैतन्य स्वरूप को जान पाता है। इस अनुभूति के लिए उसे प्रयत्न करना पड़ता है।

जिज्ञासु जगत् के सभी पर्दार्थों से असन्तुष्ट होता है। उसे सब वस्तुएँ असत्य और अविश्वसनीय लगती हैं। वह उस एक की खोज करता है जो सत्य हो तथा जिसपर विश्वास किया जा सके। जब तक वह उसे नहीं पा लेता तब तक उसकी मानसिक अशान्ति बनी रहती है।

हम अपना दिव्य स्वरूप भूल गये हैं। शिक्षक को शिष्य की स्मृति में बात भली प्रकार बिठाने के लिए एक ही पाठ बार-बार दुहराना पड़ता है। हम इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त संवेदनाओं से भ्रमित हो गये हैं। हमें अपने अस्तित्व तक पर अविश्वास करना चाहिए। इससे आध्यात्मिक जीवन का प्रारंभ होता है। बुद्ध महल में पले थे। वे रोग, बुढ़ापा, मृत्यु और अभाव नहीं जानते थे। लेकिन जब उन्होंने इन्हें प्रत्यक्ष देखा तो वे इस संसार तथा जीवन के यथार्थ प्रयोजन के सम्बन्ध में शंका करने लगे। भोग-विलास का जीवन त्याग कर उन्होंने सत्य को खोज निकाला।

आर्त :

दूसरा व्यक्ति अपने कष्ट निवारण के लिये भगवान को पुकारता है। लोग विभिन्न कारणों से भगवान को पुकारते हैं। वे सभी पर समान रूप से कृपा की वर्षा करते हैं। भगवान को किसी भी कारण से क्यों न पुकारा जाये, तीव्र व्याकुलता आवश्यक है। कृपा व मार्ग-दर्शन के लिये परमात्मा से प्रार्थना करो।

परमात्मा में ही शाश्वत सुख और शांति संभव :

कई लोग मन की शान्ति चाहते हैं, पर कोई भी

परमात्मा को उसी के लिये नहीं चाहता। सब उसका लाभ उठाना चाहते हैं। वे संसार में सुरक्षा नहीं पाते, अतः अपने स्वार्थ-पूर्ति के लिये भगवान का उपयोग करना चाहते हैं। एक बीमा कम्पनी का विज्ञापन था "मन की शान्ति व सुरक्षा के लिये बुद्ध ने सर्वस्व का त्याग किया था। अब आपको कुछ भी त्यागने की आवश्यकता नहीं है। आप केवल हमारी बीमा कम्पनी के साथ बीमा करवा लीजिये।" लेकिन इस प्रकार की आर्थिक सुरक्षा हमें मानसिक शान्ति प्रदान नहीं कर सकती। बच्चे अपने माता-पिता को अपना सर्वस्व समझते हैं पर बड़े होने पर वे देखते हैं कि उनके माता-पिता भी किसी और पर आश्रित हैं। हिरणों के एक झुण्ड का नेता डींग हाँकता था कि वह शेर से नहीं डरता। लेकिन शेर की दहाड़ सुन कर उसका सारा शरीर थर्थर कांपने लगा। वरदानों और कष्ट-निवारण का कोई अन्त नहीं है। हमारा अहंकार कामनाओं को पैदा करता है। जो आध्यात्मिक लक्ष्य के साथ मिल जाती है। अतः इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर पाने का प्रयत्न करो कि हम परमात्मा को क्यों चाहते हैं। क्या इसलिये कि वे हमें वरदान देते है, तथा दुःखों को दूर करते हैं, या हम उन्हें केवल उन्हीं के लिये चाहते हैं।

परमात्मा के असीम प्रेम की एक बूँद मानवों में पायी जाती है, जिसके कारण हम उनसे संयुक्त होते हैं। किन्तु कुछ समय बाद इसका लोप हो जाता है, और हम निराश हो जाते है। अतः हमें प्रेम, सुख, सुरक्षा आदि परमात्मा में ही खोजना चाहिए, जप ध्यान व प्रार्थना के निरंतर अभ्यास से हम परमानन्द स्वरूप परमात्मा के सानिध्य का अनुभव कर पाते हैं तथा उनके सुख व आनन्द का हममें संचार होता है।

साधना के उद्देश्य

(१) सत्य का साक्षात्कार :

सदा याद रखो कि हमारे मन समष्टि मन के अंश है और हमारी आत्माएँ परमात्मा की अंश हैं। हम जो कुछ करते है, वह सब समष्टि से सम्बन्धित होता है। सर्वव्यापी बृहत् शक्ति ही हम सभी से प्रवाहित हो रही है। भौतिक जगत जड़ पदार्थ का सागर है और हमारे शरीर उसके अंग है। यह सत्य होते हुए भी हम इससे अनभिज्ञ हैं। अहंकार के साथ तादात्म्य स्थापित कर हम इस सत्य को भूल जाते हैं। इसी का साक्षात्कार करने के लिये हमें अपने जीवन को लगा देना चाहिये।

(२) चित्तशुद्धि व अन्तर्दृष्टि का विकास :

साधना का उद्देश्य निःस्वार्थ कर्म, प्रेम व पवित्रता का जीवनस्थापन करना है इनमें चित्तशुद्धि होती है, आध्यात्मिक प्रगति का मार्ग स्पष्ट हो जाता है तथा साधक उच्च से उच्चतर स्तरों पर उठने में समर्थ होता है। साधना से चैत्यन के विभिन्न स्तरों से सम्बन्धित केन्द्रों में विचरण कर रहे मन का अवलोकन करने की अन्तदृष्टि का विकास होता है।

(३) आत्म-परमात्म सम्बन्ध की अभिव्यक्ति :

जगत परमात्मा के प्रकाश से व्याप्त है। यह मानो सूर्यलोक से प्रकाशित आकाश के समान है। आकाश में बादल के टुकड़ों की तुलना जीवों से की जा सकती है। बादलों के बीच में पाये जाने वाले बर्फ के दाने मानव की स्थूल ही के समान हैं। वे जल-बिन्दुओं तथा वाष्प से आच्छादित है, जिनकी तुलना क्रमशः सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर से की जा सकती है। जिस प्रकार बादल एक दूसरे से मिल कर कार्य करते है, जीव भी उसी प्रकार मित्रों व सम्बन्धियों के रूप में मिल कर कार्यरत होते हैं दूसरे शब्दों में, मित्र सम्बन्धी इत्यादि देह-मन से आवृत जीवात्माएँ हैं, जिनका कुछ काल के लिये साथ हो जाता है। मूलतः वे सब आत्मा है। आत्मा-परमात्मा का शाश्वत सम्बन्ध समझना तथा अनुभव करना लक्ष्य है। प्रारंभ में वह ईश्वर केवल बौद्धिक रूप से समझा जाता है। इसका अनुभव करने के लिये साधना आवश्यक है, गुरु की कृपा से पथ सुगम हो जाता है।

दैहिक व मानसिक स्तर पर ही सदा बने रहने के बदले अपनी आत्मा का चिन्तन करो। आत्मा व परमात्मा अभिन्न है। इसे पहचानना तथा अनुभव करना ही आध्यात्मिक जीवन का प्रयोजन है। स्वामी विवेकानन्द की भाषा में इस अनादि सम्बन्ध की अभिव्यक्ति ही धर्म है।

मानव व्यक्तित्व के तीन अंग है, शरीर, मन, व आत्मा। शरीर मन द्वारा ओतप्रोत है, और मन आत्मा द्वारा। ये क्रमशः सर्वव्यापी वृहत् शरीर मन और अनन्त आत्मा के अंश हैं, हम सर्वव्यापी सत्ता के अंग हैं, इस सत्य का साधना के द्वारा अनुभव करना है।

(४) संशय निवृत्ति :

असीम की धारणा के बिना ससीम धारणा करना असंभव है। अभिव्यक्त बहिजर्गत सीमित है। किन्तु दृश्य जगत के पीछे एक अनन्त शक्ति विद्यमान है असीम की धारणा इस सीमित मस्तिष्क से करना संभव नहीं है। साधना द्वारा मन की शक्तियों की वृद्धि होने पर इन सत्यों को समझा जा सकता है। शरीर में स्थित इन विभिन्न चक्रों से हम क्या समझते है। हृदय तो बहुत छोटा है, उसमें विराजित इष्ट-देव का ध्यान कैसे किया जा सकता है। इसका उत्तर यह है कि इन बातों को केवल भौतिक सन्दर्भ में नहीं समझना चाहिये। साधना द्वारा आध्यात्मिक सत्यों को समझने की हमारी क्षमता के बढ़ने पर हम जान पाते हैं कि इष्ट देव हमारी आन्तरिक चेतना में प्रकट होते हैं। साधन पथ की शंकाएँ अभ्यास द्वारा दूर हो सकती हैं। गुरु के निर्देश का इमानदारी से पालन करना चाहिये।

श्री रामकृष्ण को 'अध्यात्म रामायण' बहुत प्रिय था। उनकी स्मरण शक्ति अद्‌भूत थी। वे श्रुतिधर थे। किसी बात को एक बार सुनकर ही वे उसे यादरख पाते। स्वामी विवेकानन्द को याद रखने के लिये विषय को दो वार पढ़ना पड़ता था। ऐसी स्मरण-शक्ति मानसिक बल की द्योतक है। शक्ति प्राप्त करने का साधना एकमात्र उपाय है। प्रत्येक जप मन की शक्ति को बढ़ाता है। लेकिन हमें उन लोगों की तरह जप नहीं करना चाहिये जो माला फेरते समय अपने मन को चारों ओर भटकने देते हैं। इस प्रकार का जप किस काम का? हमें इच्छा शक्ति का उपयोग करना चाहिये। जब निरंतर, पूरी एकाग्रता के साथ किया जाना चाहिये। साधना करने वालों को एकाग्रसर की क्षमता अद्‌भूत होती है। वे जो कुछ सीखते है उसे धारण कर सकते हैं। स्वामी तुरियानन्द ग्रन्थों के बहुत अंशों की आवृत्ति करने में समर्थ थे।

नारद-भक्ति-सूत्र

—श्रीमत स्वामी वेदान्तानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना।

यथा ब्रजगोपिकानाम् ।।२१।।

यथा (जिस प्रकार) ब्रजगोपिकानाम् (ब्रज की गोपियों का) [यहाँ प्रेम का दृष्टान्त है] ।।२१

ईश्वर के प्रति इस प्रकार के प्रेम होने का दृष्टान्त ब्रज की गोपियाँ हैं ।।२१

"अहा, गोपियों का कैसा प्रेम है ! रासलीला के क्रम में जब श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये, तब गोपियाँ अविलम्ब उन्मादिनी हो गयीं। वृक्ष को देखकर कहतीं —लगता है तुम तपस्वी हो, श्रीकृष्ण को अवश्य ही देखा है! ऐसा नहीं होने पर इस प्रकार निश्चल, समाधिस्थ होकर रहते हो क्यों? दूब से आच्छादित धरती को देखकर कहतीं—हे पृथ्वी, तुमने निश्चय ही उनका दर्शन किया है; नहीं तो तुम रोमांचित होकर क्यों रहती हो ? निश्चय ही तुमने उनके स्पर्श सुख का भोग किया है। फिर माधवी को देखकर कहतीं—'ऐ माधवी, हमें माधव दे दो।' गोपियों का यह प्रेमोन्माद है।"

"जब अक्रूर और श्रीकृष्ण तथा बलराम मथुरा जाने के लिए उनके रथ पर बैठे, तब गोपियों ने रथ का चक्का पकड़ लिया। वे उन्हें जाने नहीं देतीं।"

"श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियाँ विरह से आकुल हो उठीं। भगवान ने उनकी हालत जानकर उद्धव को उन्हें समझाने-बुझाने भेजा। उद्धव ज्ञानी थे न ! वृन्दावन के लोगों के रोने-पीटने, खाने-पहनने आदि के भाव को उद्धव समझ नहीं पाते थे। गोपियों के शुद्ध प्रेम को वे मायिक और हीन समझते थे। उन्हें देख-सुनकर शिक्षा मिलेगी, यह भी एक बात थी।"

"उद्धव जब वृन्दावन गये तब गोपियाँ और ग्वाल-बाल गण उन्हें देखने के लिए आकुल होकर दौड़ पड़े। सभी जिज्ञासा करते हैं, श्रीकृष्ण कैसे हैं, वे क्या हमलोगों को भूल गये हैं ? यह कहकर कोई गोपी रोने लगीं। कोई-कोई उन्हें लेकर वृन्दावन में श्रीकृष्ण की लीला के विभिन्न स्थान दिखाने लगीं। तब उद्धव ने कहा, 'तुम सब 'कृष्ण-कृष्ण' रटकर इतना कातर क्यों होती हो ? जानती तो हो कि वे भगवान हैं, सर्वत्र हैं। वे मथुरा में हैं और वृन्दावन में नहीं—ऐसा तो हो नहीं सकता है।' गोपियों ने कहा, 'हमलोग यह सब नहीं समझतीं, तुम कृष्ण-सखा हो, ज्ञानी हो, तुम यह सब कैसी बातें करते हो ? हम सब क्या ध्यानी हैं या ज्ञानी, या ऋषि-मुनियों की भाँति जप-तप कर उन्हें पाया है ? हमलोगों ने जिन्हें साक्षात रूप से सजाया-सँवारा है, खिलाया-पहनाया हैं उनके लिए अब ध्यान कर यह सब करने जाऊँगी ? हमलोग क्या वह सब कर पायेंगी ? जो मन देकर ध्यान-जप करूँगी, वह मन हमलोगों का रहने पर ही तो वह देकर यह सब करेंगी। वह मन तो, कुछ दिन हुए, श्रीकृष्ण के पाद-पद्मों में अर्पण कर दिया है। हमारा कहकर हमलोगों को और क्या है कि उस अहं बुद्धि से जप करेंगी ?"

"उद्धव तो सुनकर ही आवाक् हो गये ! तब उन गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति जो प्रेम है वह कितना गंभीर है और वह प्रेम क्या वस्तु है यह समझकर उन्हें प्रणाम कर वे चले गये।"

"वृन्दावन लीला के मध्य तुम लोग श्रीकृष्ण के प्रति श्रीमती के मन का आकर्षण मात्र नहीं देखो-ईश्वर में मन का इस प्रकार आकर्षण नहीं होने पर उन्हें पाया

नहीं जा सकता। कामगन्ध से रहित नहीं होने पर महाभावमयी श्रीराधा के भाव को समझा नहीं जा सकता। देखो, हमलोग देखते हैं कि गोपियाँ स्वामी-पुत्र, कुल-शील, मान-अपमान, लज्जा-घृणा, लोकभय-समाजभय,—सब छोड़कर श्रीकृष्ण के लिए कितनी दूर तक उन्मत हो उठी थीं! ऐसा कर पाने पर ही ईश्वर-लाभ होता है। सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण को देखते ही गोपियों के मन में कोटि-कोटि रमण से अधिक आनन्द उपस्थित हो देह-बुद्धि का लोप हो जाता। तुच्छ देह का रमण क्या तब उन सबके मन में और उदित हो पाता था रे?"

"गोपियों का प्रेम—परकीया प्रेम था। कृष्ण के लिए गोपियों को प्रेमोन्माद हुआ था। अपने पति के प्रति इतना नहीं होता है।·····अगर कहो कि उन्हें (भगवान् को) देखा नहीं फिर उनके ऊपर किस प्रकार गोपियों की भाँति प्रेम होगा? वह सुनने से भी प्रेम होता है—नहीं जानने पर, कान से नाम सुनने पर भी, मन जाकर उसमें लिप्त हो जाता है।"

गोपियों के प्रेम की गंभीरता कैसी थी? उसका उनलोगों के प्रति श्रीकृष्ण के एक वाक्य से ही अनुमान किया जा सकता है।

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां,
स्वसाधुकृत्यं विवुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहश्रृंखलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥
भा० १०/३२/२२

'तुमलोगों ने दुर्जर गृहश्रृंखला को तोड़कर मेरे प्रति जो निर्मल प्रेम दिखलाया है, देवताओं की भाँति आयु प्राप्त करने पर भी मैं उस सुदीर्घ जीवन भर तुमलोगों के प्रेम का ऋण चुका नहीं पाऊँगा। तुम सब अपनी उदारता के गुण से मुझे ऋण मुक्त कर सकती हो।'

गोपियों को सान्त्वना देने के लिए उद्धव को मथुरा से वृन्दावन भेजने के समय भगवान ने कहा था—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् विभर्म्यहम्॥
मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः।
स्मरन्त्योहं विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्य विह्वलाः॥
धारयन्त्यतिकृच्छ्रेणप्राय प्राणान् कथञ्चन।
प्रत्यागमन सन्देशैर्वल्लव्यो मे मदात्मिकाः॥
भा० १०/४६/४—६

'गोपियों के मन-प्राण-देह सब कुछ मुझमें समर्पित हैं। मेरे लिए जो लौकिक सभी धर्मों, सभी आचारों का त्याग करते हैं उनका मैं पालन करता हूँ। मैं गोपियों का परमप्रिय हूँ। मेरे दूर चले आने के फलस्वरूप वे सब मेरे विरह में मेरे लिए उत्कण्ठा से अत्यन्त व्याकुल हो गयी हैं, मेरा स्मरणकर बार-बार मूच्छित हो जाती हैं। मेरे लौट आने के समाचार की आशा में वे सब अत्यन्त कष्टपूर्वक किसी प्रकार प्राण धारण कर रह रही हैं।"

कंस की राजसभा में चानूर मुष्टिक के साथ युद्ध के समय श्रीकृष्ण का दर्शन कर मथुरा में वास करने वाली स्त्रियाँ गोपियों के सौभाग्य की प्रशंसा करती हैं।

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप—
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितो क्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रम चित्तयानाः॥
भा० १०/४४/१५

'व्रज की गोपियाँ धन्य हैं। उन सबका चित्त सदैव कृष्णमय हो गया है। वे सब गौ-दोहन, दधिमथन, धान-काटना, घर लीपना, बच्चों को झुलाना और उन सबको स्नान कराना आदि सभी कामों को करने के समय श्रीकृष्ण के गुण-गान में नित्य मत्त रहती हैं। प्रेम के वशीभूत हो सर्वदा उन सब के नेत्रों से अश्रुपात होता रहता है, उन सबका कण गद्-गद् रहता है।"

गोपियों के प्रेम के सम्बन्ध में भगवान ने अन्यत्र उद्धव को कहा है—

ता नाविदन् मय्यनुसँगबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् ।
यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ॥

भा० ११/१२/१२

'समाधि के समय मुनिगण जिस प्रकार नाम-रूप से विस्मृत कर हो जाते हैं; नदियाँ जिस प्रकार समुद्र में मिलकर अपनी सत्ता खो देती हैं, उसी प्रकार गोपियाँ भी परम प्रेम के वशीभूत होकर मुझमें इस प्रकार तन्मय हो उठी थीं कि उन सबको अपना शरीर, प्रिय पति-पुत्रादि और संसार के सब कुछ विस्मृत हो गये थे।'

न तत्रापि माहात्म्यज्ञान-विस्मृत्यपवादः ॥२२॥

तत्र अपि (गोपियों के भीतर भी) माहात्म्यज्ञान-विस्मृत्यपवादः (भगवान के माहात्म्यज्ञान की विस्मृति हुई थी, यह अपवाद) न (यथार्थ नहीं हैं) ॥२२

कृष्ण प्रेम में उन्मादिनी होने पर भी ब्रज की गोपियों के द्वारा श्रीकृष्ण का माहात्म्यज्ञान—चूँकि वे लीला के लिए मनुष्य देह धारण करने वाले स्वयं भगवान थे—विस्मृत हुआ था, इस प्रकार का अपवाद करना उचित नहीं ॥२२

काम प्रेम से भिन्न है, यह २२ से २५वें सूत्र तक में दिखाया गया है। ऐश्वर्य ज्ञान रहने पर भय-संकोच आता है। इससे लौकिक प्रेम में अर्थात् काम में प्रेमी के ऐश्वर्यज्ञान के प्रवल रहने पर प्रेमिका और प्रेमी का आन्तरिक भाव से मिलन हो नही पाता है। गोपियाँ कृष्ण को ब्रह्म रूप में जानकर भी आस्वादन के लिए माधुर्यभाव लेकर रहती थी। "गोपियों को भी ब्रह्मज्ञान था। किन्तु वे ब्रह्मज्ञान चाहती नहीं थीं। उनमें कोई वात्सल्य भाव से, कोई सख्य भाव से, कोई मधुर भाव से, कोई दासी भाव से ईश्वर का भोग? करना चाहती थीं।"

गोपियाँ श्रीकृष्ण को साक्षात् भगवान समझती थीं, इसका प्रमाण उन सब के अपने मुख का वचन है।

न खलु गोपिकानन्दनो भवान्
अखिल देहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥

भा० १०/३१/४

'हे प्रिय, आप केवल यशोदा के ही पुत्र नहीं हैं, बल्कि समस्त प्राणियों की आप अन्तररात्मा हैं। ब्रह्म की प्रार्थना से संसार के पालन के लिए आपने यदुकुल में अवतार लिया है।'

तद्विहीनं जाराणामिव ॥२३॥

तद्विहीनं (भगवान के माहात्म्यज्ञान से रहित जी प्रेम है वह) जाराणाम् इव (वेश्याओं के प्रेम की भाँति है) ॥२३

माहात्म्यज्ञान से रहित प्रेम कुलटा नारियों के द्वारा उपपति के प्रति आसक्ति के समान माना जाता है ॥२३

माहात्म्यज्ञान नहीं रहने पर गोपियों का प्रेम भ्रष्टा नारियों के द्वारा परपुरुष के प्रति आसक्ति की भाँति काम में पर्यवसित होता।

तब स्वरूपज्ञान नहीं रहने पर क्या भगवान को प्रेम करना, उनकी पूजा करना बिल्कुल संभव नहीं है? ऐसा होने पर साधारण अज्ञानी जीवों का क्या उपाय है? नहीं, ऐसा नहीं है; उन्हें जिस प्रकार भी हो, पुकार पाने और प्रेम कर पाने पर उसका फल निश्चयपूर्वक होगा ही। काम और प्रेम में भेद—जीवों के प्रेम के साथ गोपियों के, प्रकृत भक्तों के प्रेम का पार्थक्य, आगे के सूत्रों में दिखाया गया है।

सांसारिक प्रेम और भगवत्प्रेम के पार्थक्य के सम्बन्ध में महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं—

हेया रागत्वात् इति चेत्, न उत्तमास्पदत्वां सङ्गवत् ॥

२१ सुत्र

भक्ति अनुरागात्मिका होती है, और अनुराग दुःख का कारण होता है। तब क्या भक्ति हेय है, त्याज्य

है ? नहीं , ऐसा नहीं है । सत्संग में जिस प्रकार दुःख नहीं है, उसी प्रकार भक्ति द्वारा पुरुषोत्तम का संग-लाभ होता है अतः भक्ति आश्रयनीय होती है ।

नास्त्येव तस्मिंस्तत्सुख-सुखित्वम् ॥२४॥

तस्मिन् (काम में, नायक-नायिका के अनुराग में) तत्सुख-सुखित्वम् (प्रेमास्पद के सुख में सुखी होना) नास्ति (नहीं) ॥२४

काम में केवल आत्मसुख की वासना रहती है— उसमें प्रियतम के सुख में सुखी होने का लक्ष्य नहीं रहता ॥२४

काम और प्रेम के प्रमुख भेद का यहाँ वर्णन है। काम में केवल आत्मसुख का प्रयास होता है, प्रेम में स्वार्थपरता के नाम की गंध तक नहीं होता। काम और प्रेम की पृथकता का 'श्री श्री चैतन्य-चरितामृत' नामक ग्रन्थ में सुन्दर रूप से वर्णन हुआ है—

आत्मेन्द्रिय-प्रीति-इच्छा, तार नाम काम ।
कृष्णेन्द्रिय-प्रीति-इच्छा, धरे प्रेम नाम ॥
कामेर तात्पर्य निज सम्भोग केवल ।
कृष्ण-सुख तात्पर्य प्रेम तो प्रबल ॥
आत्म-सुख-दुःख गोपी ना करे विचार ।
कृष्ण-सुख-हेतु करे सब व्यवहार ॥
लोकधर्म, वेदधर्म देहधर्म कर्म ।
लज्जा, धैर्य, देहसुख, आत्मसुख मर्म ॥
सर्वत्याग करये करे कृष्णोर भजन ।
कृष्ण-सुख-हेतु करे प्रेमेर सेवन ॥
इहाके कहिये कृष्णो दृढ़ अनुराग ।
स्वच्छ धौत वस्त्र जैसे नाहिं कोनो दाग ॥
अतएव काम प्रेमे बहुत अन्तर ।
काम अन्धतम, प्रेम निर्मल भास्कर ॥
अतएव गोपीगणे नाहिं कामगन्ध ।
कृष्ण-सुख—हेतु मात्र कृष्णोर सम्बन्ध ॥

"कृष्ण के सुख में सुखी, मेरा जो हो, तुम सुखी रहो। यही सबसे ऊँची अवस्था है। गोपियों का यही बड़ा ऊँचा भाव है।"

"गोपियों की प्रेमाभक्ति थी। अहंता और ममता ये दो चीजें प्रेमाभक्ति में रहती हैं। अहंता यानी मैं यदि कृष्ण की सेवा नहीं करूँ तो उन्हें कष्ट होगा। यहाँ ईश्वर बोध नहीं रहता। और ममता यानी 'मेरा-मेरा' करना। श्रीकृष्ण के पाँवों में काँटे चुभ जायेंगे इसलिए गोपियों का सूक्ष्म शरीर उनके चरणों के तले रहता। गोपियों को इतनी ममता थी।"

प्रत्येक क्षण ईश्वर-बोध के प्रबल रहने पर फिर आत्मवत् सेवा नहीं हो पाती—विशेषतः वात्सल्य और मधुर भाव की सेवा नहीं हो पाती। इसीसे कहते हैं—'यहाँ ईश्वर-बोध नहीं रहता।'
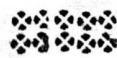
रामकृष्ण आन्दोलन की विशिष्टताएँ

—स्वामी सोमेश्वरानन्द

रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना।

लोकप्रियता का सामाजिक कारण

भारतवर्ष में विभिन्न धार्मिक संस्थानों की अनुप्रेरणा से बहुत पहले से ही अनेक समाज सेवी संस्थाएँ उठ खड़ी हुई हैं। भारत सेवाश्रम संघ की अनुप्रेरणा से हिन्दू मिलन मंदिर, ईसाई मिशनरियों से उत्साहित होकर यंग मेन्स क्रिश्चियन एसोशियेशन, पांडिचेरी के अरविन्द आश्रम के आदर्श पर गठित विभिन्न पाठचक्रों के नाम इस प्रसंग में लिये जा सकते हैं। इन सब में श्रीरामकृष्ण—विवेकानन्द के भावादर्श से गठित होने वाली संस्थाओं की संख्या ही सबसे अधिक है। रामकृष्ण मिशन को छोड़कर भी विभिन्न आश्रम, सेवा समिति, क्लब, पाठचक्र आदि की संख्या केवल भारतवर्ष में ही हजार से अधिक है। चैतन्यदेव की अनुप्रेरणा से किसी समय बंगाल के गाँवों गंजों में अनगिनत हरिसभा स्थापित हुई थी, उसी तरह आज श्रीरामकृष्ण---विवेकानन्द के आदर्शों पर गठित संस्थाएँ सर्वत्र फैल गयी हैं। इसका कारण क्या है? लोक जीवन में इस प्रभाव के पीछे जो सामाजिक कारण हैं, उन्हें रामकृष्ण मिशन की कर्मधारा पर विचार करने पर ही समझा जा सकता है।

सर्व प्रथम धार्मिक आदर्शों पर संगठित होने पर भी किसी विशेष धर्म के प्रति साम्प्रदायिक मनोभाव नहीं देख, सभी धर्मों के प्रति ही यहाँ श्रद्धा व्यक्त की जाती है, इसलिए मुसलमान-ईसाई भी इन सब में सहयोग करते हैं। मुसलमानों का ईद-मिलाप, ईसाइयों का क्रिसमस-ईस्टर, बौद्धों की बुद्ध पूर्णिमा आदि अनुष्ठान रामकृष्ण में हिन्दुओं के उत्सवों की भांति आयोजित होते हैं।

द्वितीयत: हिन्दू धर्म के विभिन्न प्रतिष्ठान अखिल-भारतीय रूप लेना चाहकर भी वास्तव में पूर्णत: ऐसा नहीं कर पाते। भारत सेवाश्रम संघ में बंगाली साधु ही अधिक हैं, चिन्मय मिशन में मराठियों की भीड़ है, डिवाइन लाइफ सोसाइटी में तमिलों और आर्यसमाज में हिन्दी भाषी साधुओं की ही प्रधानता है। इसके ठीक विपरीत रामकृष्ण मिशन में भारत के विभिन्न क्षेत्रों के साधुगण रहते हैं। मिशन की केरल की शाखाओं में मलयाली साधु, कर्नाटक में कन्नड़ साधु, महाराष्ट्र में मराठी साधु, पश्चिम बंगाल में बंगाली साधु गुजरात में गुजराती साधु कईएक रहते हैं। फलस्वरूप क्षेत्रीय भाषा और संस्कृति किसी बाधा की सृष्टि नहीं करती। इसके परिणाम स्वरूप श्रीरामकृष्ण को अपने भावानुसार ग्रहण करने की क्रिया में स्थानीय निवासियों को सुविधा होती है। आंचलिक संस्कृति को वैशिष्ट्य और प्रधानता देना भी इसका अन्यतम कारण है। मिशन की पश्चिम बंगाल शाखाओं में पूजा के भोग में मछली भी दी जाती है किन्तु प्याज नहीं; और मद्रास में प्याज की निरामिष में गणना होती है, वहाँ प्याज—देना निरामिष भोग है, कर्नाटक की शाखाओं में पूजा के भोग में चढ़ता है रसम्, पुरनपुलि इत्यादि गुजरात में श्रीखण्ड—पूजा और उत्सवों में आंचलिक भोजन ही उत्सर्ग किया जाता है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय धार्मिक उत्सव, जैसे महाराष्ट्र में गणेश पूजा, केरल में विशु, मेघालय में वेदियानुख्-

लाम् आदि आदिवासी अनुष्ठान, गुजरात में द्वारकानाथ उत्सव, प० बंगाल में दुर्गा पूजा, बंगला देश में ईद, नागालैंड में क्रिसमस, इन सब अनुष्ठानों में रामकृष्ण मिशन के भाग लेने से स्थानीय निवासी मिशन के साथ सहज ही आत्मीयता का बोध करते हैं। इन सब कारणों से रामकृष्ण मिशन अपने तत्व और व्यावहार में अखिल-भारतीय चरित्र प्रदर्शित करता है जिससे सब के लिए वह ग्रहण योग्य हो पाता है।

तीसरी बात, विभिन्न सामाजिक समस्याओं के प्रति रामकृष्ण मिशन आधुनिक दृष्टिकोण अपनाता है, जैसे परिवार-नियोजन का समर्थन करना, नारी स्वाधीनता का समर्थन करना, वैज्ञानिक सहायता से प्रस्तुत विशुद्ध सिद्धांत पंजिका को ग्रहण करना, अष्ट ग्रह-मिलन (१९६४ ई० में ?) अथवा संप्रति पृथ्वी के एक ओर अनेक ग्रहों की उपस्थिति को पुराने दृष्टिकोण के बदले वैज्ञानिक दृष्टि से ग्रहण कर शान्ति-यज्ञ इत्यादि नहीं करना, धार्मिक कुसंस्कार को (जैसे वृहस्पतिवार मास-पयलाय को १२ बजे किसी काम को शुरू नहीं करना, नहीं मानना, इत्यादि।

चौथी बात है मिशन में अनेक उच्च शिक्षित साधुओं के रहने से (कहीं नहीं जाना आदि) अधिकांश सन्यासी-ब्रह्मचारीगण विश्वविद्यालय की डिग्रीधारी हैं, उनके व्याख्यानों में बौद्धिक (intellectual) उपादान और वस्तुनिष्ट (objective) दृष्टिभंगी रहती है एवं सेक्युलर विषयों में भी व्याख्यान देने की क्षमता साधुओं में रहने से बुद्धिजीवी और शिक्षित घरों की श्रद्धापूर्ण दृष्टि मिशन सहज ही आकृष्ट कर पाता है।

पाँचवी बात है, मिशन में साधु के रूप में सहयोग करने के कार्य में कड़े नियम-कानून रहने से संख्या (क्वैन्टिटी) से गुण (क्वालिटी) की ओर दृष्टि रखना संभव हो पाया है।

रामकृष्ण मिशन के सेवा कार्य

स्वाधीन भारत में सेवा कार्य के क्षेत्र में लगे हुए प्रतिष्ठानों में रामकृष्ण मिशन ही संभवतः सबसे अधिक जनसाधारण की दृष्टि आकृष्ट करता है। जाति-धर्म की विशेषता का बिना ख्याल कर सबके समीप सहायता पहुँचा देने के कार्य में दूसरा कोई धार्मिक प्रतिष्ठान आज भी इतना उदार नहीं हो पाता, सेवा के माध्यम से धर्म-परिवर्तन का कार्य इस देश में जिन समस्याओं की सृष्टि करता है, रामकृष्ण मिशन उससे मुक्त है।

रामकृष्ण मठ और मिशन का कार्य मोटे तौर पर तीन शाखाओं में होता है—अन्नदान, विद्यादान और आध्यात्मिक सत्य का प्रचार। अनन्दान कहने से भिक्षा नहीं समझना चाहिए—सेवा का उद्देश्य लेकर दुःखी मनुष्य तक खाद्य-वस्त्र-आवास और चिकित्सा का सुयोग पहुँचा देना ही इसका मूल लक्ष्य है। इसके अतिरिक्त अनाथों और दरिद्रों के जीवनधारण और शिक्षा के क्षेत्र में सहायता भी इसके द्वारा की जाती है। चिकित्सा के क्षेत्र में मठ और मिशन के द्वारा परिचालित होते हैं १६ अस्पताल, ७७ डिस्पेंसरी, एवं १५ चल चिकित्सा गरीबों तक बिना व्यय के चिकित्सा का सुयोग पहुँचा देना एलॉपैथिक, होमियोपैथिक और आयुर्वेदीय चिकित्सा को प्रसार करना आदि के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों के ऊपर विशेष दृष्टि दी जाती है। प्राकृतिक आपदानों के समय रक्षाकार्य चलाने के साथ-साथ पुनर्वास के ऊपर भी जोर दिया जाता है। १९७८-७९ वर्ष में ८९ स्थानों में मठ और मिशन का रक्षा और पुनर्वास विभाग कार्य करता था। आँध्र प्रदेश, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश और पश्चिम बंगाल में हजारों घर तैयार कर दिये गये थे। अभी गुजरात और पश्चिम बंगाल में दुर्दशा-ग्रस्त लोगों के लिए और भी गृह-निर्माण का कार्य चल रहा है। सम्प्रति पड़ोसी देश नेपाल में रामकृष्ण मिशन ने दुर्दशा ग्रस्त लोगों के लिए गृह-निर्माण करने के लिए १ करोड़ रुपयों की एक परिकल्पना अपने हाथ में ली है। शिक्षा के क्षेत्र में स्कूल-कॉलेज को छोड़कर भी विभिन्न स्थानों में छात्रावास बनाकर छात्रों को लिखने-पढ़ने का सुयोग प्रदान किया गया है।

शिक्षा के क्षेत्र में रामकृष्ण मिशन का परिचय कुछ नया नहीं देना है। साधारण नन-फॉर्मल (अनौपचारिक) और हस्त शिल्प शिक्षा के कुल ६३६ प्रतिष्ठान वर्तमान समय में रामकृष्ण मठ और मिशन द्वारा परिचालित हो रहे हैं। इन शिक्षा संस्थानों में इन दिनों प्रायः ९० हजार छात्र-छात्राएँ अध्ययन कर रहे हैं जिनमें ४० हजार तपशीली और उपजाति सम्प्रदाय के हैं। एक हिसाब से यह पाया जाता है कि इन शिक्षण संस्थाओं के अनुमानतः ६२% छात्र-छात्राएँ गरीब घरों के लड़के-लड़कियाँ हैं—इनमें २५% गरीबी की सीमा रेखा के नीचे रहने वाले घरों से आते हैं। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि छात्र-छात्राओं का ९% उच्चवित्त परिवार का, २९% मध्यवित्त, ४०% निम्नवित्त एवं बाकी दरिद्रता की सीमा रेखा के नीचे का है। इनमें ४१% छात्र-छात्राएँ निःशुल्क या आंशिक शुल्क देकर पढ़ने का सुयोग पाते हैं—कॉलेजों में ३३%, उच्च विद्यालय में २८% एवं प्राइमरी एवं मिड्ल स्कूलों में ६३%, अन्यान्य शिक्षण संस्थाओं से छात्र-छात्रओं के लिए स्टाइपेंड की संख्या और भी अधिक है। आज भी भारत के विभिन्न स्थानों, यहाँ तक कि विदेशी राष्ट्र से भी सरकार और जनसाधारण के द्वारा नवीन शिक्षण संस्थान खोलने के लिए मिशन को आमंत्रण आते हैं, किन्तु सीमित सामर्थ्य के कारण मिशन के कार्यकर्त्ताओं के लिए सभी आमंत्रणों को स्वीकार करना संभवन नहीं हो पाता।

शिक्षा-विस्तार के क्षेत्र में रामकृष्ण मठ और मिशन के पुस्तकालयों ने भी विशेष भूमिका ली है। स्कूल-कालेजों के पुस्तकालयों को छोड़कर भी ११५ से अधिक साधारण ग्रंथागार—नगरों में ३१, मुफस्सिल क्षेत्रों में ३३ और ग्रामीण अंचलों में ५१ से अधिक हैं। अधिकांश पुस्तकालयों के साथ ही युक्त है अवैतनिक पाठ गृह। इनके अतिरिक्त चल-पुस्तकालयों के माध्यम से ग्रामीण-जन घर बैठे ही पुस्तकें पढ़ने का सुअवसर पाते हैं।

धर्म प्रचार में रामकृष्ण मठ और मिशन श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रदर्शित उदार भावों के प्रति जोर देता है। मिशन का सदस्य होने पर जो तीन शपथें लेनी पड़ती हैं उनमें एक है—मैं समस्त धर्मों को ही ईश्वराभिमुखी पथ मानता हूँ एवं वास्तविक जीवन में मैं सभी धर्मों के माननेवालों के प्रति मैत्री और शान्ति का भाव-पोषण करूँगा। धर्म और संस्कृति के प्रचार में मठ-मिशन से ८ भाषाओं में १३ पत्रिकाएँ नियमित रूप से प्रकाशित होती हैं—अँग्रेजी में ५, बंगला में २, एवं हिन्दी, मराठी, तमिल, तेलुगु, मलयालम में एक-एक! इनके अतिरिक्त २०० से अधिक अर्धवार्षिक एवं वार्षिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। ३० प्रकाशन केन्द्रों से देशी-विदेशी विभिन्न भाषाओं में नियमित रूप से पुस्तकों का प्रकाशन होता है। मठ-मिशन मूल्य से जो सब पुस्तकें छपती हैं उनमें ४९.७% का मूल्य सुलभ साढ़े पाँच रुपया से कम रहता है, एवं ८८% का २१ रुपया से कम रहता है। निम्नवित्त लोगों को पुस्तक कराने के उद्देश्य से ही मठ-मिशन की पुस्तकों की कीमत इतनी कम रखी जाती है। गाँव-गाँव में जाकर चलचित्र के द्वारा जातीय संस्कृति और शिक्षा के प्रचार के लिए १५ चल आडिओ-विजुआम (श्रुति-दृश्य) शाखाएँ हैं। इनके अतिरिक्त सांस्कृतिक अनुसंधान केन्द्र, म्युजियम, आर्ट गैलेरी इत्यादि शाखाएँ भी सांस्कृतिक प्रचार में विशेष उल्लेख योग्य हैं। अनुसूचित जनजाति और आदिवासियों को सांस्कृतिक शिक्षा देने के लिए मठ-मिशन की ओर से विभिन्न स्थानों में मेलाओं और उत्सवों का आयोजन किया जाता है। संगीत, नाटक, चित्रकारी, एवं अन्यान्य कलाविद्या २० से अधिक केन्द्रों में सिखायी जाती है।

श्री रामकृष्ण द्वारा प्रदर्शित उदार धर्ममत का तात्विक एवं व्यावहारिक के लिए मठ-मिशन के संन्यासीगण पृथ्वी के सभी देशों में निकल पड़े हैं। आस्ट्रेलिया के विभिन्न शहरों में, अफ्रीका के मारिशस, दक्षिण अफ्रीका, रोडेशिया, केनिया और मिस्र में, यूरोप के

ब्रिटेन, फ्रांस, स्वीट्जर लैण्ड, जर्मन, इटली, ग्रीस, स्पेन हॉलैण्ड, बेलजियम आदि राष्ट्रों में; दक्षिण अमेरिका के आर्जेन्टीना, ब्राजील, पेरू, वेनजुयेला आदि देशों में उत्तर अमेरिका के कनाडा, संयुक्त राष्ट्र, क्यूबा, डेनमार्क, एशिया के जापान, मलयेशिया, इन्डोनेशिया, ईराक इत्यादि देशों में संन्यासीगण, श्रीरामकृष्ण की वाणी को वहन कर ले गये हैं। रूस, पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया युगोस्लेविया, हंगरी, ताइवान, फिलीपिन आदि देशों में संन्यासीगण नियमित रूप से प्रवचन देने जाते हैं एवं स्टडी-सर्किल (अध्ययन-मंडल) के माध्यम से अपना कार्य संचालन करते हैं। अभी चीन की कम्युनिस्ट सरकार ने अपने देश में स्वामी विवेकानन्द की रचनावली का चीनी भाषा में प्रकाशन करने का प्रयास शुरू किया है।

इन दिनों मठ-मिशन के ७३% कार्य ग्रामीण अंचलों में चल रहे हैं। शिक्षा, चिकित्सा इत्यादि की व्यवस्था करने के अतिरिक्त भी गाँवों के युवकों को संगठित कर ग्रामोन्नति के कार्यों में उन्हें लगाने के लिए भी रामकृष्ण मिशन अपनी विभिन्न शाखाओं के माध्यम से कार्य कलापों का संचालित कर रहा है। स्थानाभाव के कारण उनका विस्तृत विवरण नहीं देकर संक्षेप में कुछ शाखाओं के कार्यों का विवेचन किया जाता है। बेलुड़ मठ से पल्लीश्री और पल्लीमंगल नाम से दो कार्यक्रम चलाये गये हैं उनमें प्रथम चरण में आन्ध्र प्रदेश के १० एवं पं० बंगाल के ६ : गाँवों को लिया गया है। गत दो वर्षों में ८२ बेकार युवकों एवं २७० किसानों को इस विषय में विशेष प्रशिक्षण देने के लिए उन्हें आर्थिक सहायता, कारिगरी सहायता एवं अनुसंधान की रपटें दी गयी हैं। ये तरुण पहले अपने गाँव की सामाजिक आर्थिक, नैतिक अवस्था की स्वयं खोज-खबर लेकर रपट तैयार करते हैं एवं मिशन की सहायता से कृषि और लघुउद्योग से अपने को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करते हैं। बाद में इसी परियोजना से वे अन्यान्य ग्रामवासियों को भी खींच लेते हैं एवं सब मिलकर गाँव की कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न क्रियाकलापों का प्रवर्तन करते हैं। देखा गया है कि इस प्रकार कृषकगण विगत दो वर्षों में अपनी फसल तीन गुना बढ़ा पाये हैं, मछली का उत्पादन चार गुना बढ़ा सके हैं। इनके अतिरिक्त इन युवकों ने इनमें से ही १० गाँवों में नाइट स्कूल (रात्रि पाठशाला) और वयस्क शिक्षा केन्द्र शुरू किये हैं। लघु उद्योग के क्षेत्र में विभिन्न संस्थाओं के साथ-साथ मुर्गी पालन, दुग्धशाला एवं छोटे-मोटे व्यवसाय शुरू कर पाये हैं। मिशन की नरेन्द्रपुर शाखा तीस वर्षों से भी अधिक समय से ये सारे कार्य करती आ रही है। पश्चिम बंगाल के पाँच जिलों के ८६ केन्द्रों के द्वारा ४०० गाँवों में उक्त शाखा जो कार्य कर रही है वह केवल भारत में ही नहीं राष्ट्रसंघ में भी प्रशंसित हुआ है, जिसके फलस्वरूप भारत की केन्द्रीय सरकार और विभिन्न राज्य सरकार अपने शिक्षार्थियों को विशेष प्रशिक्षण के लिए नरेन्द्रपुर भेजती है। नरेन्द्रपुर की सहायता से रात्रि-पाठशाला खोलकर, उन्नत पद्धति से खेती, मछली उद्योग, मुर्गी पालन, दुग्धशाला आदि के साथ-साथ विभिन्न ग्रामीण कुटीर उद्योग, खपरा-निर्माण, छाता-निर्माण, लकड़ी के कार्य, मिट्टी-उद्योग इत्यादि के द्वारा हजारों ग्रामीण नर-नारी एवं बेकार युवक अपने पाँवों पर खड़े हो पाये हैं।

राँची की दिव्यायन शाखा के माध्यम से रामकृष्ण मिशन आदिवासी उपजातियों के बीच इसी ढंग के कार्य करता है। ३०० गाँवों में वहाँ के लोग कार्यक्रम अपनाकर नरेन्द्रपुर की भाँति ही कार्य करते हैं। फलतः शिक्षा प्राप्त आदिवासी एवं जनजाति के लोग अपनी फसल तीन गुना बढ़ा पाये हैं, एवं इसके साथ ही कुटीर उद्योग शुरू कर तथा रात्रिपाठशाला खोलकर ग्रामोन्नति के कार्य में एक शक्तिशाली भूमिका अपनायी है। तमिलनाडु की कोयम्बटुर शाखा से शिक्षा प्राप्त बेकार युवकगण ताँत उद्योग, बेंत के कार्य, लघु यंत्र उद्योग का आरंभ करने के साथ-साथ ग्रामांचलों में स्कूल, ट्यूबवेल, पम्प, चिकित्सा केन्द्र आदि की स्वयं स्थापन

की है—रामकृष्ण मिशन की सहायता से प्रकृतरूप से ग्रामांचल में रामकृष्ण मिशन का उद्देश्य है ग्रामवासियों को भारंभ में सहायता देकर उनमें आत्मविश्वास कर्म कुशलता एवं संगठन शक्ति को जागृत करना। इस प्रकार ग्रामवासियों की चेतना में परिवर्तन लाकर उनके द्वारा ही ग्रामोन्नति कराना मिशन का लक्ष्य है। राम कृष्ण मिशन की विभिन्न शाखा यथा प० बंगाल में नरेन्द्रपुर, पुरुलिया, सरिषा, सारगाछी, मनसाद्वीप एवं सारदापीठ, तमिलनाडु में मद्रास, नटराजपल्ली एवं कोयम्बटूर; केरल में तिरुवाल्ला और त्रिपुरा, अरुणाचल में आलोंग और तिरप, आसाम में सिलचर, मेघालय में चेरापूंजी, गुजरात में राजकोट, मध्यप्रदेश में रायपुर, उड़ीसा में पुरी, राजस्थान में खेतड़ी, बिहार में राँची आदि आश्रमों ने ग्रामोन्नति एवं युवा-संगठन के क्षेत्र में दृढ़ भूमिका अपनायी है। इस रूप में ही रामकृष्ण आन्दोलन अपनी विशेषताओं के कारण एक उज्वल परिवर्तन व्यक्तिक्रम के रूप में परिगणित होता है।

समाचार एवं सूचनाएँ

युवा सम्मेलन

रामकृष्ण मिशन, जमशेदपुर

जमशेदपुर, २० फरवरी। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसाइटी के तत्वाधान में गत २० फरवरी '८४ को द्वीतीय युवा सम्मेलन का आयोजन युवकों में स्वामी विवेकानन्द के सदविचारों के द्वारा राष्ट्र निर्माण में जीवन समर्पण करने की प्रेरणा भरने के लिए किया गया। इस सम्मेलन में विभिन्न संस्थाओं के ७९७ छात्र छात्राओं तथा विभिन्न स्कूल और कॉलेजों के आठ सौ शिक्षकों नें भाग लिया। इनके अतिरिक्त नगर के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति भी इस आयोजन में सम्मिलित हुए। सम्मेलन के पूर्व "भारत के पुर्ननिर्माण के लिए स्वामी विवेकानन्द की पुकार" विषय पर विभिन्न स्कूल और कॉलेजों के छात्र-छात्राओं ने निवन्ध लिखे एवं व्याख्यान दिए। निवन्ध एवं व्याख्यान प्रतियोगिता में विजयी प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान पाने वाले छात्रों को रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य से पुरस्कृत किया गया।

सम्मेलन की अध्यक्षता रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव श्रीमत् स्वामी आत्मानन्दजी महाराज ने की। रामकृष्ण उच्चविद्यालय विष्टुपुर के प्राचार्य श्री रंजीत चौधरी ने स्वागत भाषण किया। स्वामी आत्मानन्द जी ने अपनी अध्यक्षीय भाषण में स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों पर प्रकाश डालते हुए उन सात विन्दुओं का विश्लेषण किया जिनपर रामकृष्ण मिशन और स्वामीजी के विचार आधारित हैं। वे विन्दु हैं धार्मिक एकता, प्रेम और दया, आत्म-विकासात्मक एवं चरित्रनिर्माण करने वाली शिक्षा मानवता की सेवा, विज्ञान एवं धर्म की आवश्यकता, नारी जागरण और देश प्रेम।

श्री आर० चौधरी ने धन्यवाद ज्ञापन किया। प्रतिनिधियों ने सम्मेलन में निःशुल्क भाग लिया। इस सम्मेलन के आयोजन में कुल १२००० रुपये व्यय हुए।

स्वामी अमृतरुपानन्दजी ने सम्मेलन की सफलता के लिए प्रेरणा और प्रकाश का कार्य किया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची

राँची (बिहार), रामकृष्ण-विवेकानन्द युवा सम्मेलन का आयोजन रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची में ६ से ८ मई १९८४ तक बड़े भव्य रूप में किया गया। इस सम्मेलन में कुल ३७० प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिनमें ५७ युवतियाँ एवं ३१३ युवक थे। इनमें ९४ आवासीय और २७६ गैर-आवासीय प्रतिनिधि थे।

सम्मेलन का उद्घाटन ६ मई को पूर्वाह्न ९.३० बजे रामकृष्ण मठ एवं मिशन के उपाध्यक्ष श्रीमत स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज ने किया। श्रीमत स्वामी आत्मस्थानन्दजी महाराज ने मुख्य भाषण किया और उसी दिन अपराह्न में आयोजित प्रश्नोत्तर-सत्र की अध्यक्षता की। श्रीमत स्वामी आत्मानन्द जी महाराज, सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रय; रायपुर, श्रीमत स्वामी सत्यरूपानन्दजी, रामकृष्ण मिशन, बेलुड़मठ, और श्री एस० एस० चक्रवर्ती, निदेशक, लोकशिक्षा परिषद् रामकृष्ण मिशन आश्रम, नरेन्द्रपुर (प० बंगाल) ने इस सम्मेलन की अवधि में प्रतिनिधियों को सम्बोधित किया तथा प्रतिनिधियों द्वारा उठाये गये प्रश्नों के उत्तर दिये। रामकृष्ण विवेकानन्द से सम्बद्ध विभिन्न विषयों पर प्रतिनिधियों ने अपने भाषणों के माध्यम से अपने विचार व्यक्त किये। विवेचनाएँ एवं व्याख्याएँ बड़ी जीवन्त थीं। प्रतिनिधियों ने अपने अनुभवों के सम्बन्ध में बोलते हुए कहा कि इस प्रकार के सम्मेलनों का बराबर आयोजन होना चाहिये।

सम्मेलन के अन्त में हुई आगामी कार्यक्रमों की घोषणा के अनुसार आश्रम में प्रत्येक रविवार को युवकों के लिए एक अध्ययन केन्द्र की शुरुआत की जायगी। ग्रामीण अंचलों के विकास के लिए युवकों से अपनी सेवा अर्पित करने का भी आह्वान किया गया; जिसके लिए युवकों को अपना नाम प्रस्तुत करने को कहा गया। बेबुड़ मठ में २३ से २९ दिसम्बर '८४ तक होने वाले अखिल भारतीय युवा सम्मेलन में भाग लेने को इच्छुक प्रतिनिधियों से भी अपना नाम देने को कहा गया। 'स्वामी विवेकानन्द का जीवन और उपदेश', 'शहीद भगत सिंह', 'झाँसी की रानी', 'रामकृष्ण मिशन एवं मठ : द्वितीय अधिवेशन १९८०' आदि फिल्में भी प्रति संध्या को प्रदर्शित की गयीं।

इस सम्मेलन का उद्देश्य युवा पीढ़ी को अपनी समस्यायों पर शान्तिपूर्वक विचार करने और रामकृष्ण विवेकानन्द के उपदेशों के आलोक में उनका समाधान ढूँढ़ने के लिए एक उचित और उपयुक्त मंच प्रदान करना था।

प्रशिक्षणार्थी—सम्मेलन

दिव्यायन कृषि केन्द्र के भूतपूर्व प्रशिक्षणार्थियों का चतुर्थ वार्षिक सम्मेलन दिनांक ९ एवं १० मई १९८४ को रामकृष्ण आश्रम, राँची के प्राङ्गण में आयोजित हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन बिरसा कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ एच० आर० मिश्र ने किया। सम्मेलन में प्रायः १०० से अधिक प्रशिक्षणार्थियों ने भाग लिया। सरकारी अधिकारी, बैंक कर्मचारी तथा ग्रामीण विकास कार्य में लगी स्वैच्छिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने बड़ी संख्या में इस सम्मेलन में भाग लिया। डॉ० मिश्र ने प्रशिक्षणार्थियों से अपने गाँवों में दिव्यायन की ज्योति ले जाने का आग्रह किया। श्री एस० एस० चक्रवर्ती ने रामकृष्ण मिशन, नरेन्द्रपुर की प्रेरणा से स्थापित १५० युवा-क्लबों के द्वारा अपने-अपने क्षेत्रों में ग्रामीण विकास के लिए किये जाने वाले कार्यों का विवरण दिया।

द्वितीय सत्र में प्रशिक्षणार्थियों और सरकारी पदाधिकारियों के बीच सीधा संवाद हुआ। श्री के०बी० सक्सेना ने अपने अध्यक्षीय भाषण में आश्वासन दिया कि वे विकास-उपायुक्तों के प्रशिक्षणार्थियों की समस्याओं को समाधान करने के लिए अनुरोध करेंगे।

समापन सत्र में अगले वर्ष के लिए कार्य-योजना घोषित की गयी। निर्णय हुआ कि भू० पू० प्रशिक्षणार्थी अपने-अपने गाँवों में ग्रामीण बिकास के लिए युवा क्लब स्थापित करेंगे। रामकृष्ण मिशन उन्हें अनेक प्रकार की

सहायता देने का प्रयास करेगा। इस सत्र की अध्यक्षता करते हुए स्वामी आत्मानन्दजी महाराज ने भू० पू० प्रशिक्षणार्थियों से कहा कि वे दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र के विकासात्मक कार्यक्रमों से पूरा लाभ उठावें। स्वामी शुद्धव्रतानन्दजी, सचिव, रामकृष्ण मिशन, आश्रम, राँची ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव का १४९ वाँ जयन्ती महोत्सव

रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

पटना, भगवान् श्रीरामकृष्णदेव का १४९ वा शुभ जन्मोत्सव स्थानीय रामकृष्ण मिशन आश्रम के प्राङ्गण में ४ से ११ मार्च तक बड़े उल्लास के साथ मनाया गया। ४ मार्च को प्रातः ५ बजे मंगला आरती से इस महोत्सव का शुभारंभ हुआ। दिन में हजारों लोगों को प्रसाद वितरित किया गया। ५ और ६ मार्च को क्रमश, 'कल्पतरु श्रीरामकृष्ण' तथा 'आलोकदूत स्वामी विवेकानन्द' विषयक लीलागीतों का गायन किया कलकत्ता के प्रमुख संगीताचार्य श्रीनन्दलाल अधिकारी एवं उनके सह-शिल्पीवृन्द ने। ७ से ९ मार्च तक प्रत्येक संध्या को रामकृष्ण मिशन बाजकाश्रम, रहड़ा के स्वामी निखिलात्मानन्दजी महाराज ने रामचरित मानस पर बड़े ही प्रभावोत्मक ढंग से प्रवचन किये। उनके हृदय, बुद्धि और सुललित कंठ के समन्वय से उनका प्रवचन श्रोताओं को मुग्ध करता रहा। १० मार्च को आयोजित हुआ विद्यार्थी दिवस। सभापति थे पटना उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री सत्यव्रत सान्याल तथा वक्ता थे। रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, लखनऊ के सचिव स्वामी श्रीधरानन्दजी महाराज एवं रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम के डाक्टर स्वामी ब्रह्मेशानन्दजी महाराज। आग्रह अतिथियों का स्वागत किया डा० विमलेश्वर डे ने। उसी दिन विभिन्न प्रतियोगिताओं में हिन्दी, अँग्रेजी और बंगला भाषा में प्रथम हुए विभिन्न छात्रों ने वीतशोकानन्द प्रतियोगिता में भाग लिया और श्री सान्याल ने सभी प्रतियोगिताओं में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय हुए छात्र-छात्राओं में पुरस्कार वितरित किया। डा० केदारनाथ लाभ ने धन्यवाद ज्ञापन किया। ११ मार्च को संध्या ६.३० बजे आयोजित जन सभा को सम्बोधित किया स्वामी ब्रह्मेशानन्द ने। उनके प्रवचन का विषय था 'भारत के नवजागरण में श्रीरामकृष्ण का अवदान'। सभापति थे स्वामी श्रीधरानन्दजी महाराज। दोनों वक्ताओं ने अपने प्रवचन में अपने प्रखर ज्ञान और चिन्तनपूर्ण विश्लेषण के द्वारा सिद्ध किया भारत के नवजागरण में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से श्रीरामकृष्ण ने जो योगदान किया वह भारत के इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेगा। पूरे सप्ताह भर का कार्यक्रम आश्रम के सचिव स्वामी वेदान्तानन्दजी महाराज के अतिरिक्त स्वामी शक्तिदानन्दजी महाराज तथा स्वामी सोमेश्वरानन्दजी महाराज के निरंतर उद्यम से सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची

भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का १४९ वाँ जयन्ती महोत्सव रामकृष्ण मिशन आश्रम राँची, के प्राँगण में रविवार दि० ४ मार्च १९८४ को प्रतिवर्ष की भाँति वशेष पूजा, भजन, हवन इत्यादि के साथ प्रातः ४.३० वजे से दोपहर २ वजे तक मनाया गया। इस अवसर पर एक सुन्दर शोभा यात्रा का भी आयोजन किया गया था, जिसमें श्रीरामकृष्ण देव के कई भक्तों ने तथा स्कूल के कई छात्र-छात्राओं ने उत्साह से भाग लिया। यह शोभा यात्रा ४ मार्च का प्रातः ८.३० बजे फिरायालाल चौक से निकलकर लगभग १० बजे आश्रम पहुँची। एक सुशोभित ट्रक पर भगवान् श्रीरामकृष्णदेव का चित्र सुन्दर रूप से सजाया गया था। शोभा यात्रा में बैंड पार्टी तथा तीन कीर्तन दल भी शामिल थे। इस अवसर पर लगभग ५००० लोगों को खिचड़ी का प्रसाद वितरण किया गया।

ग्रामों में श्रीरामकृष्ण जन्मोत्सव

भगवान् श्रीरामकृष्ण परमहंस का १४९वाँ जयन्ती महोत्सव राँची जिलान्तर्गत सितुमडीह, (सोनाहातु) ढीवाडीह (सोनाहातु), बुन्डु, बेड़ो एवं चुन्द (मांढर) ग्रामों में हर्षोल्लास-पूर्वक १९ से २३ मार्च तक मनाया गया। इस अवसर पर ग्रामो में शोभा यात्राएँ निकाली गईं, तथा श्रीरामकृष्ण देव की पूजा, भजन इत्यादि हुए। रामकृष्ण संघ के विद्वान संन्यासियों स्वामी अध्यात्मानन्दजी महाराज, स्वामी मुक्तिकामानन्दजी महाराज, स्वामी मेधानन्दजी महाराज आदि के 'रामचरितमानस' एवं 'श्रीरामकृष्ण के जीवन तथा सन्देह' पर प्रवचनों का विशाल संख्या में ग्रामीण आदिवासियों ने लाभ उठाया। रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची के वयोवृद्ध संगीत शिक्षक श्री दुःखहरण नायक ने स्थानीय भाषा में रोचक भाषण दिए। श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द पर आधारित चलचित्रों का भी प्रदर्शन हुआ, जिसे हजारों की संख्या में ग्रामवासियों ने देखा। इस अवसर पर ग्रामों में विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किए गए।

दिनांक १९ मार्च १९८४ को सितुमडीह ग्राम आयोजित सार्वजनिक सभा में 'श्रीराम तथा श्रीरामकृष्ण' पर बोलते हुए स्वामी निखिलात्मानन्दजी महाराज ने कहा कि भगवान राम का अवतार रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि दैत्यों का विनाश करने के लिए हुआ था जबकि भगवान श्री रामकृष्ण का अवतार हम सभी के मन के भीतर बैठे काम, क्रोध और लोभ रूपी दैत्यों का विनाश करने के लिए हुआ है। जो राम थे, जो कृष्ण थे, वे ही अब श्री रामकृष्ण के रूप में आए हैं। अवतार तत्व पर व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि अवतार शब्द 'अवतरणिका' से आया है, जिसका अर्थ होता है सीढ़ी। जब साधना की सीढ़ी से भक्त उपर चढ़कर भगवान तक पहुँचने में असमर्थ होते हैं तब भक्तों की पुकार सुनकर करुणामय भगवान स्वयं उस अवतरणिका से नीचे उतर कर भक्तों पर कृपा करते हैं यही उनके अवतार का रहस्य है।

रामकृष्ण कुटीर, बीकानेर

बीकानेर, श्रीरामकृष्ण कुटीर, बीकानेर में ४ एवं ७ मार्च को श्रीरामकृष्ण का जन्मोत्सव मनाया गया। ४ मार्च को विशेष पूजा, प्रार्थना, पाठ आदि का आयोजन हुआ एवं संध्या को भजन संकीर्तन किया गया। ७ मार्च को श्रीरामकृष्ण उपदेशों पर व्याख्यान हुए। रामकृष्ण मिशन दिल्ली के स्वामी निःस्वानन्दजी महाराज प्रमुख वक्ता थे।

पवित्र होना और दूसरों का हित करना—सभी उपासनाओं का यही सार है। जो दरिद्रों में, दुर्बलों में और रोगियों में शिव को देखता है, वही शिव की सच्ची पूजा करता है और यदि वह केवल प्रतिमा में शिव को देखता है, तब उसकी पूजा मात्र प्रारंभिक है।

—स्वामी विवेकानन्द

This is the gist of all worship—to be pure and to do good to others. He who sees Siva in the poor, in the weak, and in the diseased, really worships Siva; and if he sees Siva only in the image, his worship is but preliminary.

—SWAMI VIVEKANANDA